जुलाई
2026

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 90 अंक –7 । प्रति – ₹ 25 । ₹ 300 वार्षिक

गायत्री आंदोलन का प्रयोजन

संसार में दो शक्तियाँ हैं— एक दैवी, दूसरी आसुरी। इन दोनों का अलग प्रभाव, अलग कार्यक्षेत्र है। दैवी शक्ति को अपनाने वालों के विचार भाव, स्वभाव, गुण, कर्म में सात्त्विकता बढ़ती है। जिसके कारण उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और दूसरों के साथ सद्व्यवहार करने के कारण प्रत्युत्तर में दूसरों की ओर से भी उन्हें प्रेम, सहयोग, आदर एवं यश प्राप्त होता है। (1) भावना की पवित्रता (2) सद्गुणों का बाहुल्य (3) कर्त्तव्यपरायणता (4) दूसरों से मधुर संबंध, ये चार बातें भूलोक की दैवी संपदाएँ हैं। इन्हें प्राप्त करने वालों का जीवन निश्चय ही सुख-शांति से ओत-प्रोत हो जाता है, भले ही आर्थिक दृष्टि से उन्हें साधारण श्रेणी का ही रहना पड़े।

इसके विपरीत आसुरी शक्तियों को अपनाने वालों में इंद्रिय भोगों की लिप्सा, धन संचय का लोभ, स्वार्थपरता, असंयम आदि अनेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं, जिनके कारण उनके गुण, कर्म, स्वभाव अत्यंत विकृत, निंदनीय एवं कष्टकारक होते हैं। स्वयं दिन-रात अशांति की भट्ठी में जलते रहते हैं, और दूसरों को अपना विरोधी, निंदक, असहयोगी, बनाते जाते हैं। ऐसे लोग अपने अनुचित कार्यों से बहुधा धन-संपत्ति जमा कर लेते हैं और उसमें अपने बड़प्पन का अनुभव करते हैं, पर इस आत्मवंचना से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। उनकी खुद की आत्मा अपराधी जैसी सशंकित रहती है और किसी का भी हार्दिक प्रेम न पा सकने के कारण उनके हृदय की कली कभी भी विकसित नहीं हो पाती। आसुरी शक्ति से आसुरी संपत्तियाँ शीघ्र ही बढ़ जाती हैं, पर शोथ रोग से मोटे हुए आदमी की तरह उनका वह वैभव और बड़प्पन केवल अशांति और नारकीय दुःखों को ही उत्पन्न करता है।

(अखण्ड ज्योति, जुलाई–1951, पृष्ठ– 3)

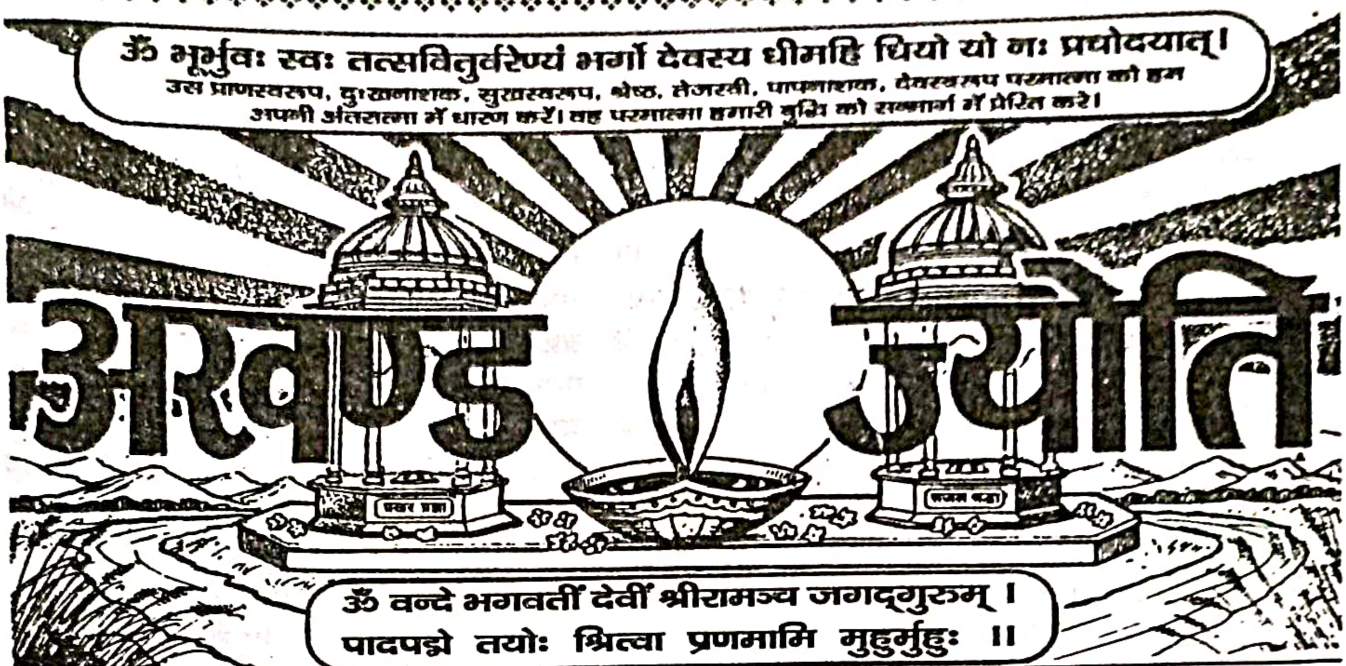

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)

दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रात: 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
व्हाट्सएप नं. 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष	:	90
अंक	:	07
जुलाई	:	2026
आषाढ़-श्रावण	:	2083
प्रकाशन तिथि	:	01.06.2026

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में सामान्य डाक से	:	6000/-

सूक्ष्मीकरण की सूक्ष्मसाधना

सूक्ष्मीकरण की सूक्ष्मसाधना समय के सवालों के लिए अनिवार्य वन गई। उन दिनों तेजी से विश्वयुद्ध के चर्चे हो रहे थे। विश्व शक्तियाँ इसकी तैयारी के लिए परमाणु अस्त्रों का जखीरा जमा कर रही थीं। आणविक अस्त्रों की जैसे होड़ लग गई थी। कोई स्टारवार की तैयारी कर रहा था। कोई जैविक अस्त्रों से जीवन को मरण में बदलने के लिए आतुर था।

साधना के सामान्य बल को इसके नियंत्रण के लिए पर्याप्त न मानकर गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण की सूक्ष्मसाधना का निश्चय किया। इसी बीच एक सिरफिरे ने उन पर पहले पिस्तौल से हमले की कोशिश की। इसमें असफल होने पर उसने उन पर चाकू से ताबड़तोड़ कई वार किए, जिन्हें उन्होंने अपने हाथ पर झेलकर उसे क्षमा कर, जाने दिया। इस घटना ने एक बात तो स्पष्ट कर दी—असुरता किसी को भी माध्यम बनाकर साधना में व्यतिक्रम—व्यवधान उत्पन्न कर सकती है।

संपूर्ण एकांत ही समाधान था। इस एकांत के तीन वर्षों में उन्होंने असुरता से संघर्ष की सामर्थ्य रखने वाले पाँच वीरभद्र प्रकट किए। विश्व कुंडलिनी साधना को संपूर्ण किया। गायत्री महाविद्या के उच्चतम स्वरूप सावित्री महाशक्ति के प्रयोग में उन्होंने नए आयाम जोड़े। वर्ष 1984 से 1987 ई. के मार्च तक इसे संपन्न करके 1987 ई. से 1990 ई. के मध्य तक उन्होंने गायत्री परिवार का विशाल संगठन, शांतिकुंज की व्यवस्था के सभी सूत्र माताजी को सौंप दिए। अब उनकी नीति-निश्चय का निर्धारण यही था कि स्थूलशरीर का त्याग करके सूक्ष्मशरीर से सूक्ष्मसाधना को संपन्न कर असुरता का अंत करेंगे। गायत्री जयंती 2 जून, 1990 को उनका यह नवीन साधना-संकल्प साकार हुआ। ❑

‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- सूक्ष्मीकरण की सूक्ष्मसाधना 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  पिघलते ग्लेशियरों की त्रासदी 5
- भारतीय सनातन ज्ञान-परंपरा 7
- आत्मबोध 9
- हाथ में काम, हृदय में राम 10
- भगवान शिव का रौद्र रूप 12
- सजल-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा 14
- अनंत ईश्वर की सामर्थ्य 15
- **पर्व विशेष—गुरु पूर्णिमा संस्मरण**
  साधारण को असाधारण बनाने वाले महापुरुष 16
- ईश्वरनिष्ठ जीवन का सार 19
- सद्गुरु संग साधना का मर्मबोध 21
- विचारशक्ति 22
- नचिकेता की आत्मज्ञान-विषयक उत्कंठा 23
- व्यक्तित्व विकास के चार चरण 25
- राष्ट्रीय पक्षी मोर 29
- एक समय में एक कार्य 32
- पर्व-त्योहार—एक सामाजिक संस्कार 33
- चरित्र निर्माण 36
- गंगा माँ के प्रति संवेदना 37
- हम करें राष्ट्र-आराधन 38
- **हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—6**
  समाजनिष्ठ बनाने का सूत्र 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—208**
  परामनोविज्ञान पर शोध 46
- **युगगीता—314**
  बुद्धि एवं धृति के तीन भेद 50
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  संकल्प की अपार शक्ति (गतांक से आगे) 52
- **विश्वविद्यालय परिसर से—253**
  वसुधैव कुटुंबकम् का सूत्रधार बना विश्वविद्यालय 59
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  विद्याओं का जीवन-रहस्य 61
- **अपनों से अपनी बात**
  संवेदनात्मक संवाद की आवश्यकता 64
- पंचकोश-साधना (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

॥ शिवोऽहम् शिवोऽहम् शान्तोऽहम् निरञ्जनः ॥

जुलाई-अगस्त, 2026 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	10 जुलाई	योगिनी/रमा एकादशी 'स्मा.'	शनिवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस
गुरुवार	16 जुलाई	रथयात्रा	सोमवार	17 अगस्त	नाग पंचमी
शनिवार	25 जुलाई	देवशयनी एकादशी	बुधवार	19 अगस्त	तुलसी जयंती
बुधवार	29 जुलाई	गुरु पूर्णिमा	रविवार	23 अगस्त	पवित्रा एकादशी
रविवार	09 अगस्त	कामिका एकादशी	शुक्रवार	28 अगस्त	श्रावणी पूर्णिमा/रक्षाबंधन
बुधवार	12 अगस्त	हरियाली अमावस्या	सोमवार	31 अगस्त	बहुला चौथ

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

विशिष्ट सामयिक चिंतन

पिघलते ग्लेशियरों की त्रासदी

हिमालय का बनता-बिगड़ता पूरा पारिस्थितिकी तंत्र बहुत ही संवेदनशील है, जिसमें विकास, पर्यटन एवं तीर्थाटन से जुड़ी अनियंत्रित मानवीय गतिविधियों से इस तंत्र का संतुलन डगमगा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग ने इस जले पर जैसे नमक छिड़कने का काम किया है। परिणामस्वरूप हिमालय में ग्लेशियरों के पिघलने व सिकुड़ने की प्रक्रिया तीव्र हो गई है, साथ ही इन पर बन रही झीलें संकट का कारण बन रही हैं, जिनका होना मैदानी क्षेत्रों के लिए विपदा का कारण बन रहा है और यदि स्थिति नहीं सँभली तो भविष्य में इसके और विकराल रूप देखने को मिल सकते हैं।

साथ ही ऊँचाइयों में कम बरफबारी और अधिक वर्षा के चलते ग्लेशियरों का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। ग्लेशियर तीव्रता से सिकुड़ रहे हैं। तीन-चार दशकों पहले 5000 मीटर या इससे अधिक ऊँचाई वाले स्थलों पर बरफबारी हुआ करती थी, लेकिन अब मानसून के समय सामान्य से अधिक वर्षा हो रही है, जिसका ग्लेशियरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

तापमान में वृद्धि और सामान्य से अधिक वर्षा के कारण ग्लेशियरों के पिघलने की दर बढ़ रही है। ग्लोबल वार्मिंग के साथ उच्च हिमालय वाले क्षेत्रों में मानवीय आवा-जाही का भी ग्लेशियरों पर दुष्प्रभाव पड़ रहा है। परिणामस्वरूप ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं और इनसे निकलने वाली नदियों का जलस्तर भी तेजी से बढ़ रहा है। ग्लेशियर के आस-पास ढलान वाले क्षेत्र होते हैं, अतः ग्लेशियर पिघलने की वजह से भू-स्खलन व हिम-स्खलन का खतरा बढ़ जाता है।

अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अधिक वर्षा के कारण वहाँ की कमजोर मिट्टी, ढलान वाले पहाड़ों से बड़ी-बड़ी चट्टानों व पत्थरों को अपने साथ नीचे लाती है, जो आपदा का कारण बनती है। वाडिया हिमालय भू-विज्ञान संस्थान, उत्तराखंड-जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख में 11 ग्लेशियरों पर अध्ययन कर रहा है, जहाँ ग्लेशियर पिघल रहे हैं और पीछे खिसक रहे हैं। यहाँ के विशेषज्ञों के अनुसार ग्लेशियर प्रतिवर्ष 5 से 20 मीटर की दर से पीछे खिसक रहे हैं।

जांस्कर में जहाँ ग्लेशियरों के पीछे जाने की दर 20 मीटर प्रतिवर्ष है, वहीं चोराबाड़ी ग्लेशियर 6 से 8 मीटर प्रतिवर्ष पीछे खिसक रहा है। पिंडारी ग्लेशियर पर ग्लोबल वार्मिंग की सबसे अधिक मार देखने को मिली है। एक अनुमान के अनुसार पिछले 70 वर्षों में पिंडारी ग्लेशियर 700 मीटर से अधिक सिकुड़ चुका है।

ग्लेशियर के पिघलने से कई तरह की चुनौतियाँ सामने आ सकती हैं, जिनमें हिमझीलों का बनना और उनसे होने वाले नुकसान प्रमुख हैं। केंद्रीय जल आयोग, वाडिया हिमालय भू-विज्ञान संस्थान एवं आईआईटी रुड़की की रिपोर्ट के अनुसार पहाड़ों में भू-स्खलन से बनी झीलें गंभीर आपदा का रूप ले सकती हैं।

केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) की रिपोर्ट के अनुसार जून—2025 तक देश में हिमनद झीलों का क्षेत्रफल लगभग 30 प्रतिशत बढ़ चुका था।

वाडिया हिमालय भू-विज्ञान संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार उत्तराखंड में 1000 से अधिक हिमनद झीलें विद्यमान हैं।

उपग्रह चित्रों के आधार पर इनमें से 426 झीलों की पहचान की गई है, जिनमें से 25 को संभावित खतरनाक श्रेणी में रखा गया है। इनमें से 6 सबसे अधिक खतरनाक श्रेणी की हैं, 6 मध्यम खतरे वाली और 13 कम खतरे वाली मानी गई हैं। अलकनंदा घाटी में 9 और धौलीगंगा घाटी में 6 झीलें सबसे अधिक संवेदनशील पाई गई हैं।

वर्ष—2025 के मानसून काल में हुई प्राकृतिक आपदाओं को देखते हुए इन झीलों की निगरानी व इनके खतरों को कम करने की ठोस रणनीति पर कार्य करना समय की माँग है। ग्लेशियरों के टूटने से निचले क्षेत्रों में बाढ़ का खतरा बढ़ रहा है। भारी वर्षा और ग्लेशियरों के पिघलने से नदियों में पानी की मात्रा बढ़ रही है।

भू-वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि ग्लेशियरों की स्थिति में सुधार नहीं होता है तो नदी के किनारे बसे निचले क्षेत्रों में बाढ़ का खतरा और भी बढ़ जाएगा। इनका बिजली-उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ रहा है। बाढ़ के साथ आई गाद जमा होने के कारण जलाशयों की भंडारण-क्षमता घट जाती है, जिससे विद्युत-उत्पादन बहुत हद तक प्रभावित होता है।

विदित हो कि किसी भी ढाँचागत और सतत विकास में भू-विज्ञान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विशेषज्ञों के अनुसार पर्यावरणीय दृष्टि से अति संवेदनशील हिमालयी भू-भाग में किसी भी परियोजना को प्रारंभ करने से पूर्व विस्तृत भू-भाग की संरचना की जानकारी, भू-स्खलन और इससे जुड़ी समस्याओं को गंभीरता से देखा जाना चाहिए।

हिमालयी क्षेत्रों में अतिसंवेदनशील भू-भाग में अनियोजित मानवनिर्मित संरचनाओं से प्राकृतिक जलधाराओं और मौसमी नालों का प्रवाह अवरुद्ध होकर बदल जाता है। ऐसे में ग्लोबल वार्मिंग और पर्यावरणीय असंतुलन के बीच एकाएक ग्लेशियर टूटने या उनके पिघलने की गति बढ़ने से यही जलधाराएँ अपने आस-पास की आबादी वाले क्षेत्रों में भारी तबाही मचाती हैं। इसके चलते भू-स्खलन और भू-धँसाव की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं।

इस तरह स्थानीय भूगोल को ध्यान में रखकर विकास कार्य करने की आवश्यकता है। साथ ही ग्लेशियरों को बचाने के लिए गैसों के उत्सर्जन को कम करना होगा; क्योंकि ग्लेशियरों के टूटने का मुख्य कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि और गैसों का उत्सर्जन रहता है।

इसके लिए एक राष्ट्रव्यापी नीति बनाने की आवश्यकता है और साथ ही हिमालय के पावन एवं संवेदनशील परिवेश के साथ अनावश्यक छेड़-छाड़ न करने में ही समझदारी है। ❑

इस समय मनुष्य जाति का भाग्य उदय होने वाला है। इनसान फिर सिर उठाकर चलेगा। इनसान का गरदन झुकाकर चलना मुझे नापसंद है। आदमी की कमर झुकी हो तो कोई बात नहीं, किंतु सिर झुका नहीं रहना चाहिए। यही गायत्री मंत्र का चमत्कार होगा— युगशक्ति का चमत्कार होगा कि कमजोर से आदमी में इतनी हिम्मत, इतनी ताकत आ जाएगी कि वह सिर उठाकर चलना सीख लेगा। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

भारतीय सनातन ज्ञान-परंपरा

भारतीय ज्ञान-परंपरा, भारतीय वैचारिक संपदा एवं भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को 'सनातन' कहकर पुकारा जाता रहा है और ऐसा कहने के पीछे का कारण स्पष्ट है। अन्य सभी परंपराओं का प्रारंभ एवं अंत ज्ञात है। उनका प्रतिपादक कौन था, कब जन्मा, कब उसका अवसान हुआ—इन विषयों पर जानकारियाँ उपलब्ध हैं। जबकि भारतीय परंपरा किसी एक महापुरुष से प्रारंभ नहीं हुई, अपने स्वरूप एवं प्रवर्तन में दैवी है, या यों कहें कि अपौरुषेय है और इसका कभी अवसान न हुआ, अपितु यह अजस्र वर्षों से अहर्निश प्रवाहमान रही है। इसलिए सही अर्थों में मात्र भारतीय ज्ञान-परंपरा ही सनातन परंपरा है।

परंपरा शब्द का प्रयोग भी जब होता है तो उसका अर्थ ये ही है कि वह एक शृंखला है, जिसमें समय के अनुरूप परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे। इसीलिए भारतीय सनातन परंपरा ने कभी **'सर्वज्ञानमयो हि सः'**—अर्थात सभी विद्याओं को सूत्र रूप में समेटने वाले वैदिक वाङ्मय को मूल ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया।

कालांतर में आवश्यकता पड़ने पर अन्य ग्रंथों को इसका अंग बनाया गया। परंपरा होने के कारण ही वेदों में समयानुकूल व्यवस्था के रूप में ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद्, षड्दर्शन, उपवेद, वेदांग इत्यादि जुड़ते चले गए। यहाँ तक कि शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन इत्यादि सभी पद्धतियों के आध्यात्मिक भाव के आधार भी इस एक परंपरा से निकलते चले गए।

किसी को इस परंपरा में सगुण भाव स्वीकार्य लगा तो उसने उसे अपनाया तो वहीं निर्गुण उपासक निराकार चेतना की उपासना हेतु ज्ञान-परंपरा को आधार मानते रहे। जिसे हम भारतीय ज्ञान-परंपरा कहते हैं—उसका अंश एवं अंग वेदांत भी है तो भक्ति भी है, कीर्तन भी उसका हिस्सा है तो आत्मबोध भी। उस परंपरा के अनुरूप माया भी स्वीकार्य है तो विक्षेपों का समूल शमन भी उसी परंपरा का अंग है।

ऐसा भी कहा जा सकता है कि इन परंपराओं, आध्यात्मिक मूल्यों को जाने बिना भारतवर्ष का सत्य स्वरूप समझ पाना असंभव है। जिस भारतभूमि के लिए विष्णुपुराण कहता है कि इसमें देवतागण भी गीत का गायन करते हैं, जिस भारतभूमि में स्वर्ग एवं अपवर्ग समान हैं, वह भारतभूमि धन्य है; क्योंकि यहाँ पर देवता एवं मनुष्य, दोनों का निवास है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे॥

इस अलौकिक भारतभूमि का ज्ञान बिना भारतीय ज्ञान-परंपरा को समझे असंभव है। इसीलिए महापुरुषों ने भारतीय ज्ञान को **'सनातन गंगा प्रवाहः'** कहा अर्थात माँ गंगा के समान अविरल प्रवाह से संपन्न, दोष से मुक्त रहने वाली पवित्र धारा। इसकी एक और विशेषता ये रही कि इसने प्रारंभ से ही मात्र मानने पर ध्यान नहीं दिया, वरन स्वयं अनुसंधान करके सत्य के परीक्षण पर जोर दिया। 'मालविकाग्निमित्रम्' में महाकवि कालिदास ने इस बात को कुछ इस रूप में कहा है कि प्राचीन ज्ञान ही ग्राह्य है तथा नवीन त्याज्य है, ऐसा नहीं है। किसी भी ज्ञान की परीक्षा करके, विवेक योग्य मानने पर ही उसे अपनाना चाहिए।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते,
मूढ़ः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

इसी को पूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण सत्संकल्प में कुछ इस रूप में कहा कि परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे। कहने का अर्थ स्पष्ट है कि भारतीय परंपरा लकीर को फकीर मानकर घिसी-घिसाई को पीटने वाली मूढ़मान्यता नहीं, वरन विवेकसम्मत को मानकर त्याज्य को त्यागने वाली एवं श्रेष्ठ को अपनाने वाली परंपरा रही है।

यही कारण है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा में ग्रंथों को विविध विधाओं में लिखा गया। वृत्ति, टीका, भाष्य, वार्तिक, समीक्षा—ये सभी इसीलिए एक साथ उपलब्ध थे; क्योंकि भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल आग्रह सत्य को जानने में रहा—मेरे या तेरे को अपनाने और ठुकराने में नहीं। यही कारण है कि महर्षि पतंजलिकृत योगसूत्र पर विज्ञान भिक्षु की योगवार्तिक भी उपलब्ध है, महर्षि व्यास का भाष्य भी उपलब्ध है और राजा भोज की मार्तंडवृत्ति भी है; क्योंकि किसी भी महापुरुष का यह आग्रह नहीं रहा कि उनका प्रतिपादन स्वीकारा जाए, वरन यह अनुरोध रहा कि सत्य को स्वीकारा जाए।

फिर भारतीय ज्ञान-परंपरा का एक और मूल भाव रहा कि भारतीय ज्ञान-परंपरा का हेतु आत्मज्ञान, आत्मबोध, आत्मप्रतिष्ठा है। मात्र उद्‌देश्यविहीन जानकारी को एकत्रित करना भारतीय ज्ञान-परंपरा का उद्‌देश्य नहीं रहा, वरन उद्‌देश्य यह रहा कि उस ज्ञान को प्रदान किया जाए, जिससे मनुष्य जीवन के उद्‌देश्य एवं लक्ष्य की प्रतिपूर्ति होती रहे। **'सा विद्या या विमुक्तये'**—अर्थात विद्या वह है, जो मुक्त कराए।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का उद्‌देश्य अपनी आत्मप्रतिष्ठा को प्राप्त करना ही रहा है। भारतीय शास्त्र कहते हैं—**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः** अर्थात इसका उद्‌देश्य आत्मबोध हेतु ही है। चाहे वेद रहे हों या पुराण, चाहे महाकाव्य यथा रामायण, महाभारत रहे हों या योग-आयुर्वेद सबका उद्‌देश्य यही था कि हम मानवोचित गरिमा का अनुपालन करते हुए अंतर्जगत् के अंतिम शिखर को स्पर्श कर सकें।

इसीलिए ऋषियों के लिए वचन आता है कि उन्होंने अपनी चेतना के तल पर आविष्कारों को करके जो ज्ञान प्राप्त किया, उसे जनमानस को उपलब्ध कराया। **साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयः बभुवुः**। वेदों की गुह्य परंपरा श्रुतियों के द्वारा जनमानस तक पहुँचाई गई तो वेदों के दुरूह होने पर भारतीय ज्ञान-परंपरा ने पुराणों के माध्यम से इसी कार्य को संपन्न किया। इसीलिए तंत्रसार में अभिनवगुप्त ने कहा कि—

इदं ज्ञानम् मोक्षकारणं बंधननिमित्तस्य
अज्ञानस्य विमोचकत्वात्।

अर्थात इस ज्ञान का उद्‌देश्य उसे अनुभूत करना है; क्योंकि ये त्रिविधि दुःखों से मुक्ति का साधन है और ये मात्र वैदिक परंपरा के लिए ही सत्य नहीं है, वरन भारतीय ज्ञान-परंपरा के प्रत्येक विभेद के लिए सत्य है कि भारतीय ज्ञान-परंपरा मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य का पथ दिखाती है।

योगसूत्र कैवल्य की ओर इशारा करते हैं, वेदांत आत्मज्ञान की ओर, शिल्पकलाएँ भी आत्मबोध की ओर इशारा करती हैं तो भारतीय संगीत नादयोग को इसी ज्ञान प्राप्ति का आधार बनाता है। इसीलिए भारतीय ज्ञान के इस अजस्र प्रवाह को पुनः अन्वेषण और प्रतिपादित करने की आवश्यकता है।

यह एकमात्र परंपरा है, जिसने समस्त विश्व को एक परिवार माना और आज की परिस्थितियों में जब सारा विश्व विग्रह के दौर से गुजरता नजर आ रहा है—मात्र भारतीय ज्ञान-परंपरा के सम्यक भाव की प्रतिष्ठा ही भविष्य की मानवता की पथ-प्रदर्शक बन सकती है। ❑

आत्मबोध

मनुष्य का वास्तविक स्वरूप केवल शरीर और मन तक सीमित नहीं है। शरीर तो मिट्टी से बना हुआ नश्वर आवरण है, मन भी परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है, किंतु आत्मा शाश्वत, अजर-अमर और अविनाशी है। वही आत्मा जीवन की धुरी है, चेतना का स्रोत है और संपूर्ण अस्तित्व का आधार है।

उपनिषदों ने आत्मा को अमृत तत्त्व कहा है। ईशावास्योपनिषद् उद्घोष करता है— **'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्'** अर्थात इस संपूर्ण जगत् में उसी दिव्य आत्मतत्त्व का वास है।

यही आत्मा प्रत्येक प्राणी में व्याप्त होकर उसे जीवन, शक्ति और प्राण प्रदान करती है। मनुष्य के भीतर जो चेतना, विवेक, प्रेम और करुणा का प्रवाह है, वह आत्मा से ही प्रकट होता है। जब यह आत्मचेतना सक्रिय होती है तो व्यक्ति के विचार और कर्म पवित्र हो जाते हैं। छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** ब्रह्म अर्थात आत्मा सत्यस्वरूप है, ज्ञानमय है और अनंत है।

यही अनंत चेतना मनुष्य को पशुता से ऊपर उठाकर दिव्यता की ओर ले जाती है। शरीर और मन तो साधन मात्र हैं, परंतु आत्मा ही वह ज्योति है, जो उन्हें दिशा देती है। आत्मा का अनुभव तर्क या बाहरी प्रमाणों से संभव नहीं है। यह साधना, ध्यान और अंतर्मुखता से ही सुलभ होता है। जब मनुष्य अपने अंत:करण की गहराई में उतरता है, तब वह पाता है कि उसके भीतर एक ऐसी ज्योति प्रज्वलित है, जो कभी क्षीण नहीं होती। यही आत्मज्योति जीवन को संतुलन, धैर्य और प्रेरणा प्रदान करती है।

कठोपनिषद् कहता है—**'न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।'** आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। वह नित्य, शाश्वत और अविनाशी है। मनुष्य के जीवन का परम उद्देश्य इसी आत्मा को पहचानना और उसके अनुरूप जीवन जीना है। जब तक आत्मा से दूरी बनी रहती है, तब तक जीवन केवल बाहरी हलचलों और अस्थिरताओं में उलझा रहता है, परंतु जैसे ही आत्मसंपर्क स्थापित होता है, वैसे ही जीवन ऊँचे आदर्शों, श्रेष्ठ कर्मों और दिव्य विचारों की धारा में प्रवाहित होने लगता है।

शरीर और मन तो क्षणभंगुर हैं, पर आत्मा शाश्वत और दिव्य है। जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम अपने भीतर की आत्मा को पहचानें और उसके प्रकाश से अपने कर्म, विचार और संबंधों को आलोकित करें। यही आत्मबोध मनुष्य को सच्चे अर्थों में मुक्त, निडर और आनंदमय बनाता है। आत्मा की साधना केवल दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि जीवन का व्यावहारिक मार्ग है। यह साधना मनुष्य को शांति, प्रेम और अमरत्व की अनुभूति कराती है।

बृहदारण्यकोपनिषद् का उद्घोष है—**'अहं ब्रह्मास्मि'** मैं ही ब्रह्म हूँ। यह उद्घोष आत्मा के अद्वैत सत्य की ओर संकेत करता है। इस सत्य का बोध होते ही जीवन में एक ऐसा प्रकाश भर जाता है, जो अज्ञान को मिटा देता है। मृत्यु को अमरत्व में और अंधकार को प्रकाश में परिवर्तित कर देता है। आत्मा का बोध ही जीवन का परम पुरुषार्थ है और यही शाश्वत ज्योति मानव को उसकी दिव्य धरोहर से मिलाती है। ❑

हाथ में काम, हृदय में राम

देवर्षि नारद को भगवान के परम भक्त और तीनों लोकों के समाचारवाहक के रूप में जाना जाता है। वे सदैव भगवन्नाम संकीर्तन, स्मरण करते हुए, वीणा बजाते हुए विचरण करते रहते हैं। एक बार नारद जी के मन में यह जिज्ञासा हुई कि इस पृथ्वी पर भगवान का प्रिय भक्त कौन है? जब उन्होंने वैकुंठ जाकर भगवान विष्णु से यह प्रश्न किया तो भगवान ने मुस्कराते हुए पृथ्वी पर रहने वाले एक साधारण किसान का नाम लिया। नारद जी चकित रह गए।

उन्होंने सोचा—एक साधारण किसान, जो दिन-रात मिट्टी में सना रहता है, वह भगवान का अत्यंत प्रिय भक्त कैसे हो सकता है? इसी सत्य को जानने के लिए नारद जी पृथ्वीलोक पर उस किसान से मिलने पहुँचे। नारद जी भोर के समय ही उस किसान के द्वार पर पहुँच गए। उन्होंने देखा कि किसान सोकर उठा और सबसे पहले अत्यंत श्रद्धा से उसने एक बार—हे प्रभु! कहा और इसके बाद वह अपनी दिनचर्या में जुट गया।

उसने अपनी गाय को दुहा, बैलों को चारा खिलाया, घर के आस-पास सफाई की और फिर बैल और हल को लेकर खेत की ओर निकल पड़ा। नारद जी उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

उन्होंने देखा कि किसान ने पूरा दिन कड़ी धूप में पसीना बहाया। वह हल चलाता रहा, बीज बोता रहा और सिंचाई करता रहा। दोपहर के भोजन के समय उसने फिर एक बार भगवान का नाम लिया।

शाम को थककर घर लौटते समय उसने तीसरी बार भगवान को याद किया। पूरे दिन में उस किसान ने केवल तीन बार भगवान का नाम लिया। नारद जी को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ।

उन्होंने सोचा—मैंने तो इसे केवल तीन बार भगवान का नाम लेते सुना, फिर प्रभु ने इसे श्रेष्ठ भक्त क्यों बताया? नारद जी वैकुंठ लौटे और अपनी शंका भगवान विष्णु के सामने रखी। भगवान ने उनकी बात सुनी और बिना कोई सीधा उत्तर दिए, नारद जी को एक कार्य सौंपा।

भगवान ने नारद जी को एक कटोरा दिया, जो ऊपर तक तेल से भरा हुआ था। उन्होंने कहा— "नारद! तुम इस तेल से भरे पात्र को लेकर पूरे ब्रह्मांड की एक परिक्रमा कर आओ, लेकिन ध्यान रहे, तेल की एक बूँद भी नीचे नहीं गिरनी चाहिए।" नारद जी ने चुनौती स्वीकार की। उन्होंने अपनी पूरी एकाग्रता उस कटोरे पर लगा दी।

वे सावधानी से कदम बढ़ाते हुए पूरे ब्रह्मांड का चक्कर लगाकर वापस लौटे। उन्हें गर्व था कि उन्होंने एक बूँद तेल भी नहीं गिरने दिया। वापस आने पर विष्णु भगवान ने पूछा—"नारद! इस यात्रा के दौरान तुमने कितनी बार मेरा नाम लिया?"

नारद जी चौंक गए और बोले—"प्रभु! मेरा पूरा ध्यान तो इस तेल के पात्र पर था। अगर मैं आपका नाम लेता रहता तो मेरा ध्यान भटक जाता और तेल गिर जाता। इसलिए उस दौरान मैंने एक बार भी आपका नाम नहीं लिया।" भगवान विष्णु मुस्कराए और बोले—"यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है नारद। उस किसान पर अपने परिवार का भरण-पोषण करने, खेती करने और समाज की सेवा करने की बड़ी जिम्मेदारियाँ हैं। उन जिम्मेदारियों

को पूरी निष्ठा से निभाते हुए भी, वह कम-से-कम तीन बार तो मुझे याद करता है।''

भगवान ने समझाते हुए आगे कहा—''नाम तो वह सिर्फ तीन बार ही लेता है, पर वह अपने हर सांसारिक कार्य को मेरा अर्थात भगवान का ही कार्य समझकर करता है। वह अपने हर कर्म को मुझे ही अर्पित करता जाता है। गाय दुहते समय वह यह सोचता है कि यह गाय भगवान की ही है और वह भगवान की गाय को भगवान के लिए ही दुह रहा है। सफाई करते समय वह सोचता है कि वह सफाई भी भगवान के लिए कर रहा है। हल चलाते समय वह सोचता है कि यह खेत भगवान का ही है और वह भगवान के खेत में भगवान के लिए ही हल चला रहा है।''

भगवान आगे कहने लगे—''इस प्रकार वह हर कर्म को ही मेरा अर्थात भगवान का कर्म समझकर बड़े मनोयोग से करता है। वह मेरा नाम भले ही तीन बार लेता है, पर मेरा स्मरण वह सदैव करता है। इसलिए वह किसान मुझे प्रिय है। उसके जीवन में भक्ति और कर्म का अद्‍भुत संगम है।''

फिर भगवान ने नारद जी को समझाया—''नारद तुम्हारे पास तो कोई सांसारिक जिम्मेदारी नहीं थी, फिर भी तुम तेल के एक पात्र के कारण मुझे भूल गए; जबकि वह किसान जीवन के कठिन संघर्षों के बीच भी भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना नहीं भूलता।''

नारद जी को अब समझ में आया कि एक साधारण किसान भगवान को क्यों प्रिय है। यह कहानी हमें यह सिखाती है कि अपना कर्त्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना भी ईश्वर की सेवा है। किसान का अपने खेत में पसीना बहाना भी एक प्रकार की प्रार्थना है।

हर कर्म में भगवान को याद करना भी भगवान की भक्ति है। भगवान का नाम जप है और अपने हर कर्म को भगवान को अर्पित करते जाना ही कर्मयोग है।

भक्ति इस बात से नहीं मापी जाती कि आपने कितनी बार भगवान का नाम जपा, बल्कि इस बात से नापी जाती है कि जब आपने नाम लिया तो उसमें समर्पण कितना था, श्रद्धा कितनी थी? आध्यात्मिक जीवन और सांसारिक कर्त्तव्यों के बीच संतुलन बनाना ही सच्ची मानवता है और यही व्यावहारिक अध्यात्म है। सच्ची भक्ति का अर्थ है—हाथ काम में और हृदय राम में। □

संत से उनके शिष्य ने पूछा—''गुरुदेव! आप इतनी सारी दैनिक व्यस्तताओं के मध्य भी ध्यान-पूजा-भगवद्‍भजन का समय कैसे निकाल लेते हैं?'' संत ने उस शिष्य को समीप से गुजरती एक महिला दिखाई, जो सिर पर पानी से भरी गागर व दोनों हाथों में अपने दोनों बच्चों को लिए जा रही थी। संत बोले—''सिर पर इतना वजन रखने से क्या वह औरत अपने बच्चों को भूल जाती है?'' शिष्य बोला—''नहीं गुरुदेव! वह तो उनकी माँ है, कैसे भूल सकती है?'' संत बोले—''तो मैं भी तो भगवान का पुत्र हूँ, उन्हें कैसे भूल सकता हूँ? कितने भी सांसारिक काम हों, मुझे परमपिता परमात्मा सदा याद रहते हैं।''

भगवान शिव का रौद्र रूप

संसार में कर्मों की गति को अनवरत बनाए रखने के लिए, भाँति-भाँति की व्यवस्थाओं का क्रम है। पुण्य और पाप, कृपा और कोप, पुरस्कार और दंड इसी श्रेणी में बनाई गई व्यवस्थाओं का प्रतीक हैं।

शुभ कर्म समयानुसार पुण्य बनकर प्रकट होते हैं एवं करने वाले के जीवन में श्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि एवं शांति लाकर उसे कल्याण की प्रतीति कराते हैं।

अशुभ कर्म भी काल कर्म विधान से गुजर कर मनुष्य को कृत कर्मों का दंड भुगतने के लिए विवश करते हैं। इसी व्यवस्था को कुछ लोग भगवान की कृपा अथवा उनके कोप से पुकारते हैं या इसे प्रकृति की व्यवस्था के अंतर्गत मिल रहे पुरस्कारों अथवा दंड से संबोधित करते हैं।

नाम की सुविधा कुछ भी हो, तथ्य की दृष्टि से यह पूर्णतया सत्य है कि कर्मों के परिणाम से बचने की स्वतंत्रता किसी को भी नहीं है। इसका पालन सृष्टि के नियंता को स्वयं करना पड़ता है तो इससे सामान्य जीव व प्राणी का अछूता रहना असंभव ही कहा जाएगा।

इस प्रक्रिया का उद्देश्य प्राणिमात्र को आत्मपरिशोधन एवं लोक-कल्याण के लिए प्रेरित करना तथा साथ ही सामाजिक संरचना को टूटने न देना है।

यदि गलत कर्म करने पर भी कोई दंड का भागीदार न बने तो सृष्टि में मात्र अराजकता एवं विप्लव ही दिखाई पड़ेगा, समरसता, सौहार्द, सहिष्णुता, सदाशयता जैसे गुण कल्पना की दुनिया में सिमटकर रह जाएँगे।

अधर्म व अनीतिगत कार्य करने पर सामान्य रूप से प्रकृति, माँ की तरह समझाने-बुझाने का पथ स्वीकार करती है, परंतु जब कभी प्राणियों के कुकर्म, शरारती बच्चों की तरह बढ़ जाते हैं और सामान्य डाँट-डपट से कार्य बनता नजर नहीं आता तब वही माँ, कठोर शिक्षक की तरह बच्चों से कड़ाई से पेश आने में संकोच नहीं करती।

ऐसा करने का एक उद्देश्य, उन्हें ऐसा सबक देना भी होता है, जो उन्हें फिर वैसी गलती दोबारा करने से वर्षों रोकता रहे। यदि ऐसा न किया जाए तो ऊधमी बच्चों को कुओं में कूदने से और शरारती बच्चों को अपना हाथ जला लेने से रोकने का क्या मार्ग हो सकता है?

सामान्य क्रम में प्राणियों को गलत कार्यों, अधर्म, पाप, दुष्कर्म करने से रोकने के लिए धर्म शिक्षा की व्यवस्था रखी गई है। शास्त्रों के उदाहरण, परमात्मा की सर्वव्यापकता पर विश्वास इत्यादि ऐसे ही माध्यम हैं, जो बहुत हद तक लोगों को गलत कार्य करने से रोकते भी हैं और उन्हें सही पथ पर चलते रहने के लिए प्रेरित भी करते हैं, परंतु इसके बाद भी गलत पथ का चयन करने वाले शासकीय दंड-व्यवस्था का शिकार बनते हैं तथा कानूनी मुकदमों से लेकर कारावास की सजा तक, उनको स्वीकार करनी पड़ती है।

भगवान श्रीकृष्ण के समय से लेकर आज तक यही व्यवस्था रही है। उच्छृंखल, उद्दंड, अनैतिक व्यक्तियों को सुधारने के लिए कभी-

कभी कठोर मार्ग का चयन करना आवश्यक हो जाता है। असुरता जब पूर्ण अराजकता पर उतर आए तो उसे मात्र निंदा-स्तुति से काबू में नहीं लाया जा सकता, उस पर प्रहार करना आवश्यक हो जाता है। पशु-पक्षी घर के अंदर घरेलू सदस्य की तरह प्रेम से भी रहते हैं, पर वही उन्मुक्त होकर प्राणियों के संहार पर उतर आएँ तो उनको गोली तक मारनी पड़ सकती है।

सामान्य अपराध पर मजिस्ट्रेट आर्थिक दंड लगाकर छोड़ देते हैं, परंतु वीभत्स कार्य करने वाले अपराधी मृत्युदंड तक पाते हैं। सौ गालियाँ सुन लेने तक भी भगवान कृष्ण शिशुपाल को क्षमा कर देते हैं, परंतु एक सीमा पार कर लेने पर वे भी सुदर्शन चक्र उठाने को विवश हो जाते हैं।

कभी-कभी भगवान शिव को भी त्रिशूल का वरण करना पड़ता है। कभी-कभी करुणावत्सल आदिशक्ति को भी नरमुंडों की माला गले में लेकर खप्पर में रक्त का पान करना पड़ता है। असाधारण परिस्थितियों में सामान्य नीति-नियमों को भुला कर कठोर अनुशासन का पालन अनिवार्य हो जाता है।

मनुष्य के विषय में भी यही बात है। उसे एक निर्धारित अनुशासन में रहने के लिए, नियत मर्यादा में रहने के लिए कहा गया है, परंतु जब वह पूर्ण रूप से स्वार्थ, अहंकार व मद में डूबकर, नर-पशु की तरह, नर-पामर की तरह, नर-पिशाच की तरह व्यवहार करने लगता है, तब उसे सुधारना हर कीमत पर जरूरी हो जाता है।

पाशविक प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती हैं तो कल्याणकारी शिव, महारुद्र में बदल जाते हैं। सदा समाधि में निमग्न रहने वाले प्रभु भोलेनाथ, औघड़दानी; जब अनीति से, अमर्यादा से क्षुब्ध होते हैं तो सृष्टि में त्राहि-त्राहि मच जाती है। उनकी शांत जटाएँ, हृदय को विदीर्ण करने वाले सर्पों का रूप धारण करती हैं।

उनकी करुणामयी सृष्टि-लोमहर्षक रूप लेती है, उनका त्रिशूल शत्रुओं को भयभीत कर देता है, उनके डमरू का नाद दिग्दिगंत को कँपकँपा देता है, उनके तांडव की थिरकन लोक-लोकांतरों को दीप्त कर देती है और उनका रौद्र रूप उस सबको निगल जाता है, भस्म कर देता है, नष्ट कर देता है जो कि इस सृष्टि के संतुलन के लिए अवांछनीय है, अशुभ है।

यह समय भगवान शिव के इसी रौद्र रूप को देखने का व अनुभव करने का है। दिग्दिगंत में उनका यही स्वरूप दिखाई पड़ रहा है, और इसमें वह सब नष्ट होने वाला है, जो अवांछित है। □

पंजाब के प्रसिद्ध वीर राजा रंजीत सिंह ने अपना विजय अभियान प्रारंभ करने से पूर्व अपनी माँ से पूछा—"माँ! मैं सबसे पहले किस राज्य पर आक्रमण करूँ?"

माँ बोली—

"सबही भूमि गोपाल की, उसमें अटक कहाँ।
जिसके मन में अटक है, वो ही अटक रहा॥"

रंजीत सिंह की समझ में आ गया कि मन कमजोर नहीं पड़ना चाहिए, फिर किधर को भी निकल पड़ें। नए उत्साह के साथ वे अपने विजय अभियान पर निकले व सफल होकर लौटे।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

सजल-श्रद्धा, प्रखर-प्रज्ञा

सजल श्रद्धा, प्रखर प्रज्ञा ऋषियुग्म की संयुक्त चेतना का प्रतीक स्मारक है, जिसे समाधिस्थल के रूप में युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार में स्थापित किया गया है। करोड़ों गायत्री परिजनों के लिए यह अपने गुरु, इष्ट-आराध्य, भगवान से जुड़े अनगिनत भावों, स्मृतियों एवं संदेशों को झंकृत करने वाला दिव्य स्थल है, साथ ही अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने, भाव निवेदन करने का पावनस्थल भी।

शिष्य-साधक-गायत्री परिजन इस पावनस्थल पर अपने हृदय के भाव निवेदन कर निश्चिंत हो जाते हैं कि पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी तक अपना संदेश पहुँच गया और अब जो उचित है, वही होगा।

इस समाधिस्थल पर ध्यान एवं भाव सुमिरन हेतु बिताए कुछ पल जीवन में आत्मशुद्धि, शांति एवं समाधान के अनमोल पल साबित होते हैं। हों भी क्यों नहीं, आखिर अवतारी ऋषियुग्म के दिव्य ऊर्जा-प्रवाह से यह क्षेत्र आप्लावित है। हालाँकि स्थूलरूप में सजल श्रद्धा—परमवंदनीया माताजी एवं प्रखर प्रज्ञा—परमपूज्य गुरुदेव का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन सूक्ष्मरूप में दोनों एकाकार हैं।

जीवनकाल में ही वे दो शरीर एक प्राण हो गए थे। अतः सजल श्रद्धा, प्रखर प्रज्ञा तात्त्विक रूप में गायत्री परिजनों के लिए ऋषियुग्म की सम्मिलित चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सजल श्रद्धा ऋषियुग्म की चेतना की तरलता के उस अविरल प्रवाह की याद दिलाती है, जो श्रेष्ठता से असीम प्यार, अटूट अपनत्व के रूप में व्यक्त होती है। यह भाव-संवेदना के साथ अनंत धैर्य, अध्यवसाय एवं सकारात्मकता का प्रतिनिधित्व करती है, जो प्रतिकूलताओं एवं जीवन के अवरोधों के बीच भी आदर्श के प्रति अटूट आस्था को धारण किए अविचल भाव के साथ अपने ध्येय की ओर प्रवाहित रहती है।

प्रखर प्रज्ञा दूरदर्शी विवेकशीलता, जीवन की सम्यक समझ की प्रतीक है, जो तमाम तरह के भ्रम एवं झंझावातों को चीरते हुए यथार्थ तक पहुँचने तथा बुद्धि के उत्कृष्टतम नियोजन में सफल होती है। यह ऋषियुग्म के उस जाज्वल्यमान प्रकाश स्वरूप का प्रतीक है, जिसके दिव्य आलोक में असंख्य परिजनों ने जीवन की नई दिशा पाई।

इस तरह सजल श्रद्धा, प्रखर प्रज्ञा के रूप में समाधिस्थल ऋषियुग्म की संयुक्त चेतना के जीवंत स्मृति चिह्न हैं, जो नश्वर देह से परे भावचिंतन का एक सशक्त आधार प्रस्तुत करते हैं। महाकाल की महाशक्ति के रूप में ये युगशक्ति का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्राण-सर्वा-परमात्मा नि,

प्राणाययतीत्ये तस्मात्प्रणवः।

अर्थात प्राण को परमात्मा में लीन करने के कारण प्रणव कहा गया।

अपनी भाव-श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ गुरुकृपा के संयोग के आधार पर यह श्रेष्ठतम संभावनाओं के प्रस्फुटन का आधार बनते हैं। शिष्य-साधक एवं समस्त श्रद्धालुगण तीर्थ चेतना के इन प्रतीकों पर अपनी श्रद्धा समर्पित करके सत्प्रयोजनों के लिए उनसे शक्ति, अनुदान, आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। ❑

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

अनंत ईश्वर की सामर्थ्य

यजुर्वेद का एक मंत्र कहता है—

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिँ सर्वतस्पृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥

अर्थात अनंत नेत्रों और अनंत करों वाला, अनंत ईश्वर अपनी दृष्टि और कृपा से संपूर्ण जगत् में व्याप्त है, फिर भी उससे परे है।

जब हमारा दृष्टिकोण संकीर्ण होता है तो हम संसार को सीमित दृष्टि से देखते हैं, लेकिन जैसे ही दृष्टि व्यापक होती है हम देख पाते हैं कि यह ब्रह्मांड कितनी विराटता और सौंदर्य से भरा है।

सीमित सोच हमें तंग दायरे में बाँध देती है; जबकि व्यापक दृष्टि अनंत संभावनाओं के द्वार खोल देती है। परमात्मा की समीपता केवल आराधना या पूजा में नहीं, बल्कि अपने विचारों, कर्मों और दृष्टिकोण में भी प्रतिबिंबित होनी चाहिए।

जिस क्षण हमारी सोच और कर्म भगवान की विशालता से जुड़ जाते हैं, उसी क्षण हमारी क्षमताएँ भी अनंत होने लगती हैं। जीवन में सच्ची संपन्नता केवल भौतिक संसाधनों से नहीं, बल्कि उदार हृदय, पवित्र विचार और सृजनशील कर्म से आती है।

यह संपन्नता गरीब को भी महान बना देती है और धनी को भी सच्चा सुख प्रदान करती है। जब दृष्टि शुद्ध होती है तो संसार की हर वस्तु, हर परिस्थिति में ईश्वर का प्रकाश झलकने लगता है। जीवन में चाहे कैसी भी कठिनाई क्यों न हो, ईश्वर की कृपा और अपनी अंतःशक्ति पर भरोसा रखने वाला व्यक्ति अडिग रहता है।

सच्ची साधना का अर्थ है—अपने भीतर की शक्ति को पहचानना, उसे ईश्वर की शक्ति से जोड़ना और हर परिस्थिति में धैर्य, साहस और करुणा बनाए रखना। यही वह मार्ग है, जिससे हम अनंत ईश्वर की समीपता से अनंत सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। ❑

ब्रह्मा जी की दो पुत्रियाँ हुईं। एक का नाम रखा गया श्रद्धा और दूसरी का प्रतिष्ठा। विवाह योग्य होने पर ब्रह्मा जी ने उनके लिए सत्य और असत्य नामक दो वर ढूँढ़े। सत्य परिश्रमी, धर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यपरायण था, परंतु निर्धन था। असत्य धनवान था, परंतु बेईमान और कुटिल बुद्धि था। श्रद्धा ने सत्य का और प्रतिष्ठा ने असत्य का चयन किया। विवाह के उपरांत प्रतिष्ठा का जीवन विसंगतियों के कारण दूभर हो गया तो वहीं श्रद्धा और सत्य का मिलन सर्वांगीण उन्नति लेकर आया।

पर्व विशेष–गुरु पूर्णिमा संस्मरण

साधारण को असाधारण बनाने वाले महापुरुष

ज्ञान के शिखर की भाँति जिनका व्यक्तित्व होता है, वो तिमिर से आच्छादित आकाश में प्रखर सूर्य की भाँति दमकते हैं। उनके निकट होना सौभाग्य की प्रतीति कराता है और उनके विचारों का स्पर्श जीवन में बोध जगाता है। पारस पत्थर को छू पाने का अप्रतिम सौभाग्य भी क्या रोज़–रोज मिलता है?

कुछ ऐसा ही सौभाग्य उनको भी मिलता था, जो पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य को प्राप्त कर पाते थे। चिंतन की प्रखरता, भावनाओं की उदात्तता, उद्देश्य की उत्कृष्टता एवं समाज के लिए अहर्निश कुछ अच्छा करने का भाव उनके व्यक्तित्व को एक ऐसी विशालता प्रदान करता था, जिसके निकट पहुँचने पर स्वतः ही ऐसा भाव जागने लगता था मानो आप हिमालय की गोद में आकर के बैठ गए हैं।

देश के, समाज के महत्त्वपूर्ण चिंतक–विचारक उनके सामीप्य में अपने जीवन की दिशा को प्राप्त करते थे। जो भटके थे, उन्हें सुधरने का विश्वास उनके शब्दों से मिलता था। जो दुःखी थे, उनकी पीड़ा उनके संसर्ग में यों मिट जाती थी, जैसे अमोघ औषधि वर्षों के कष्ट का हरण कर लेती है। जिनके पास कुछ अच्छा करने की चाहत थी वो उनके मार्गदर्शन में बल पाती थी तो वहीं स्वयं को हीन समझने वाले उनके पास से आत्मविश्वास का उपहार लेकर के लौटते थे।

गायत्री परिजनों के लिए तो ये ही अतुलनीय सौभाग्य था कि वो हमारे पथप्रदर्शक थे, गुरु थे, अपने थे, सर्वस्व थे। शांतिकुंज उन दिनों अपने स्वरूप को प्राप्त कर ही रहा था।

दूर–दूर से कार्यकर्त्ता अपना सर्वस्व त्यागकर उनके बुलावे पर खिंचे चले आ रहे थे। प्रबुद्ध जनमानस को उनकी यह पुकार व्यर्थ नहीं थी। महाकाल की पुकार अनेकों ऐसों को व्यथित–विचलित कर रही थी, जिनका जन्म विराट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हुआ था।

ऐसे अनेकों परिजनों का आना–शांतिकुंज में स्वयं को स्थापित करना 70 से 80 के दशक में हो रहा था। हर जगह पर निर्माण इस गति से हो रहा था, मानो स्वयं विश्वकर्मा ही एक नगरी का निर्माण कर रहे हों। प्रातःकाल 3.30 बजे से ही शांतिकुंज की आध्यात्मिक दिनचर्या ऐसी गति को प्राप्त कर लेती थी, जिसका वर्णन मात्र शब्दों से संभव न हो सकेगा।

शिष्य का प्रश्न था—"श्रद्धा व वैराग्य की साधक के जीवन में क्या भूमिका है?"

गुरु ने सारगर्भित उत्तर दिया—"श्रद्धा के बिना भक्ति दृढ़ नहीं होती और वैराग्य के बिना वेदांत अनुभवगम्य नहीं होता। जब ईश्वर के ऐश्वर्य से भी वैराग्य हो जाए, तब सच्चा वेदांत जीवन में उतरता है।"

हर कार्यकर्त्ता सुबह की किरणों के निकलते ही अपने कार्यक्षेत्र की ओर बढ़ चलता था। उनके

नन्हे-मुन्ने बच्चे शांतिकुंज के विशाल प्रांगण में खेलते-कूदते अपने को आह्लादित अनुभव करते थे। स्वाभाविक था कि इन छोटे-छोटे बच्चों की ओर किसी की निगाहें नहीं थीं। जहाँ युग निर्माण की दुंदुभि बज रही हो और युगशक्ति माँ गायत्री के प्रवाह में बड़े-बड़े पर्वत खिंचे चले आ रहे हों, वहाँ छोटी-छोटी पाषाण मणिकाओं की ओर किसकी दृष्टि जाती है? पर पूज्य गुरुदेव तो सर्वज्ञ थे, सर्वस्व थे, सबके थे और सबके होते हुए भी सबके अपने थे।

उन्होंने एक दिन सुबह-सुबह उन सारे बच्चों को अपने कक्ष में बुलाया, जो शांतिकुंज के जीवनदानी कार्यकर्त्ताओं की संतान थे। बच्चों को लगा कि पूज्य गुरुदेव संभवतया लड्डू देने बुला रहे हों। पर वो तो वंदनीया माताजी देती हैं न? कुछ बड़े बच्चों ने छोटे बच्चों को समझाते हुए कहा। कारण किसी को पता नहीं था, पर पैर सबके पूज्य गुरुदेव के कक्ष की ओर स्वयं खिंचे चले जा रहे थे, मानो चुंबक उन्हें खींच रहा हो।

ऐसे बच्चों की संख्या 15-20 से ज्यादा नहीं थी। 40-50 से ज्यादा परिवार उन दिनों शांतिकुंज आए भी नहीं थे और जो आए थे, उनमें से हरेक के बच्चे इतने बड़े नहीं हुए थे कि स्वतः गुरुदेव के कक्ष तक पहुँच जाएँ। बाल मंडली का वो छोटा-सा समूह देखते-देखते गुरुदेव के सामने के फर्श पर समा गया। बिना किसी कारण के हल्ला मचाने वाले बच्चों का वो समूह दत्तचित्त होकर बैठा था।

पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व का आकर्षण ही ऐसा था। सब शांत होकर बैठ गए और सोचने लगे कि गुरुदेव क्या कहेंगे? इसकी प्रतीक्षा करने लगे। उनको ज्यादा देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। सभी बच्चों को संबोधित करते हुए गुरुदेव बोले—"बेटा! ये कागज तुम सबके लिए हैं।" एक कागज का पुलिंदा सभी बच्चों में बराबर बँट गया। "इन पर तुम लोगों को रोज एक पत्र लिखना है। क्षेत्र के लोगों को यह बताना है कि शांतिकुंज किस उद्देश्य से बना है, यहाँ जो भी कार्य हो रहे हैं, उनको अपनी भाषा में लोगों तक पहुँचाना है।"

पूज्य गुरुदेव ने यह भी तय किया कि हर पत्र के बदले 10 पैसे मिलेंगे। 5 पत्र में एक बच्चे की पॉकेटमनी पूरी हो जाती थी। साथ ही गुरुदेव के ऐसा करने का उद्देश्य यह भी था कि बच्चों की भाषा प्रांजल हो, परिष्कृत हो, लिखने-पढ़ने योग्य बने। वो बच्चे आज भी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं कि गुरुदेव के कारण ही हमारी भाषा सुरक्षित रह सकी।

पूज्य गुरुदेव आगे बोले—"बेटा! शांतिकुंज के व्यवस्थापक तुम सब लोग हो। तुम्हें दो काम और करने हैं—पहला, जैसे ही किसी को तुम प्रखर प्रज्ञा की ओर से प्रवेश करते देखो तो उसे पूरे शांतिकुंज का दर्शन कराते हुए और यह बताते हुए कि यह क्या है और क्यों है—यहाँ ले आओ। यहाँ माने शांतिकुंज प्रतीक्षालय।" गुरुदेव ने यह बात बड़े गहरे अर्थ से कही थी। पहला, वो बच्चे जो यों ही ऊधम मचाते घूमते थे, अब उनके मचलते कदमों को दिशा एवं उद्देश्य मिल गए थे।

दूसरा—जब छोटे-छोटे बच्चे, कुरता-धोती पहनकर किसी भी आगंतुक का स्वागत करते थे तो उसका प्रभाव उस व्यक्ति की मनोदशा पर इतना गहरा पड़ता था कि वो शांतिकुंज के निर्माण का उद्देश्य कभी भूलता न था। तीसरा—शांतिकुंज का दर्शन हर बच्चे को सदा के लिए याद हो गया और आज चाहे वो कितने भी बड़े हो गए हों—इस घटना को कभी भूलते नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेव बच्चों को समझाते हुए बोले—"एक काम तो यह कि हर आगंतुक को शांतिकुंज

दिखाना तुम्हारा काम है और दूसरा यह है कि यदि कहीं पर भी किसी कार्यालय में बैठने वाले व्यक्ति की जगह खाली देखो तो वहाँ बैठ जाओ। उस दिन के कार्यकर्त्ता तुम हो, उस स्थान के समन्वयक तुम हो।

यह इतना गहरा चिंतन था कि इसका अद्भुत प्रभाव शांतिकुंज-व्यवस्था पर पड़ा। जो भी व्यक्ति शांतिकुंज आता था वह इतने छोटे बच्चों को कार्यालय की जिम्मेदारी वाली जगह पर बैठा देखकर प्रसन्न हो जाता था और जिसको उस जगह बैठा होना था वह सोचता था कि उसे उसकी जिम्मेदारी के प्रति और सचेत होने की जरूरत है।

वो बच्चे एकाग्र होकर पूज्य गुरुदेव के द्वारा दी जा रही जीवन बदल देने वाली बातों को सुन रहे थे। गुरुदेव अंतिम बात बच्चों को समझाते हुए बोले—"और बेटा! यदि आश्रम में कहीं भी कुछ भी पड़ा देखो, ईंट देखो, लोहा देखो तो उसे सही जगह पर लगाकर आओ।" यह इतना गहरा चिंतन था कि जिसने हर बच्चे का जीवन बदल दिया।

जिस जिसने उस सीख का पालन किया, उसके हृदय में शांतिकुंज के प्रति इतना गहरा भाव जन्मा, जिसे हटा पाना संभव नहीं। मन में उसके एक ही सोच आई थी 'यदि यहाँ ईंट लगाने वाला मैं हूँ तो इसे बिगाड़ने वाला मैं नहीं बन सकता।' उन चार सीखों से ही पूज्य गुरुदेव ने छोटे-छोटे बच्चों को जिम्मेदार कार्यकर्त्ता में बदल दिया था। यही तो महापुरुषों की महानता होती है, जो नाचीज को महान बनाकर खड़ा कर देती है। ऐसे महान थे पूज्य गुरुदेव। ❑

आचार्य रामानुज के पास एक व्यक्ति शिष्य बनने की आकांक्षा लेकर आया। आचार्य ने उससे शिष्यत्व धारण करने के पीछे का कारण पूछा तो वह बोला—"विप्र! मैं परमात्मा के प्रति भक्ति को विकसित करना चाहता हूँ।" यह सुनकर आचार्य बोले—"पुत्र! तुम्हारा उद्देश्य तो श्रेष्ठ है, पर भक्ति से पहले यह बताओ कि क्या तुमने कभी किसी को प्रेम किया है?" वह व्यक्ति बोला—"नहीं प्रभु! प्रेम से लगाव पैदा होता है, इसलिए मैंने माता-पिता, भाई-बहन सबसे संबंध-विच्छेद कर दिए हैं। विवाह तो मेरा पहले से ही नहीं हुआ।" आचार्य बोले—"पुत्र! उनसे संबंध-विच्छेद करने से क्या तुम्हारे उनके प्रति भाव समाप्त हो गए?" वह व्यक्ति बोला—"नहीं आचार्य! पर मैं अपने भावों को दबाकर रखता हूँ, उन्हें प्रकट नहीं करता।" आचार्य बोले—"पुत्र! भक्ति भावों के रूपांतरण का नाम है, शमन का नहीं। यदि तुम्हारा किसी के भी प्रति प्रेम होता तो उसे मैं परमात्मा की तरफ रूपांतरित कर देता, परंतु तुम तो भावनाओं को शत्रु मानकर बैठे हो तो रूपांतरण कैसे कर पाओगे?" उस व्यक्ति को भक्ति का मर्म समझ में आ गया कि जो प्रत्येक आत्मा से निरासक्त प्रेम कर सकता है—वही प्रभु की सच्ची भक्ति भी कर सकता है।

ईश्वरनिष्ठ जीवन का सार

ईश्वर का आशीर्वाद उन्हीं के जीवन में प्रचुरता से बरसता है, जो अपने आचरण में संतुलन, संयम और अनुशासन को स्थान देते हैं। जैसे एक स्नेही पिता अपने पुत्र को असीम प्रेम करते हुए भी उसकी सही वृद्धि के लिए समय-समय पर दिशा देता है, वैसे ही परमात्मा भी हमें नियम और मर्यादा के पथ पर चलने की प्रेरणा देते हैं। सच्चा प्रेम वही है, जो व्यक्ति को परिस्थितियों का वास्तविक स्वरूप और उनके परिणाम स्पष्ट रूप से समझाए।

यही कारण है कि जीवन में अनुशासन अपनाना उतना ही आवश्यक है जितना प्रेम और प्रोत्साहन देना। अनुशासन वह अदृश्य शक्ति है, जो साधारण व्यक्तित्व को असाधारण ऊँचाइयों तक पहुँचा देती है। मर्यादाओं, नियमों, संयम और त्याग का संगम व्यक्ति को इतना ऊँचा बनाता है कि वह युगों तक लोकहित के लिए कार्य कर सके। यह एक ऐसा ऋण है, जिसे चुकाना हर कोई गौरव का विषय मानता है। जीवन में आलस्य और आत्मसंयम की कमी ही प्रगति के सबसे बड़े शत्रु हैं।

सच्चा सुख और स्थायी संतोष उसी को मिलता है, जो अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखते हुए समय और प्रतिभा को लोक-कल्याण में लगाता है। अनुशासन का पालन करने वाले ही सच्चे सहयोगी और नेता बनते हैं; क्योंकि उनमें आत्मविश्वास, स्पष्ट दृष्टि और प्रखरता का अद्वितीय संगम होता है। इसलिए यदि हम वास्तव में ऊँचाइयों को छूना चाहते हैं तो हमें अनुशासन, समयपालन, त्याग और सेवा के मार्ग को जीवन का आधार बनाना होगा। अनुशासन कोई बंधन नहीं, बल्कि वह सुनहरा मार्ग है, जो हमें हमारी वर्तमान सीमाओं से उठाकर सफलता और दिव्यता की चोटी तक पहुँचा देता है।

ईश्वर का प्रेम केवल भावना या शब्दों तक सीमित नहीं है। यह एक ऐसी अनुभूति है, जो हमारे जीवन के हर कार्य, हर विचार और हर संबंध में उतरकर उसे पवित्र बना देती है। सच्चा प्रेम तभी संभव है, जब हम निर्माण और संवर्द्धन की क्षमता विकसित करें—अपने भीतर ऐसा मन, ऐसी दृष्टि और ऐसा भाव पैदा करें, जो हर परिस्थिति में श्रेष्ठता को चुन सके।

भक्ति की सहजता इस बात पर निर्भर है कि हमारे और भगवान के मध्य का संबंध कितना वास्तविक, गहरा और निस्स्वार्थ है। उच्च आदर्शों को अपनाना व सरल बनाना ही आध्यात्मिक प्रगति का पहला कदम है, ताकि हर व्यक्ति अपने व्यवहार और मानसिक प्रवृत्तियों को श्रेष्ठ दिशा में मोड़ सके। ईश्वर के सच्चे प्रेम में तीन प्रमुख आधार हैं—अडिग आस्था, पवित्र प्रेरणा और निस्स्वार्थ सेवा।

जब ये गुण जीवन में उतरते हैं तो व्यक्तित्व समाज के लिए एक जीवंत संदेश बन जाता है। धैर्य, संयम, सहनशीलता और सहयोग—ये वे दीपक हैं, जो हमारे मार्ग को सदैव आलोकित रखते हैं। ईश्वरप्राप्ति कोई क्षणिक भावुकता का विषय नहीं है, यह सतत साधना, चरित्र निर्माण और आचरण में दिव्यता उतारने का परिणाम है। सच्ची भक्ति का अर्थ है—अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में ईश्वर की उपस्थिति को अनुभव करना और उसी के अनुरूप अपने कर्म, वाणी और विचार को ढालना।

उपासना केवल मंदिर में बैठकर कुछ समय प्रार्थना करने का नाम नहीं है, बल्कि जीवन को पूर्णतः शुद्ध, उदात्त और सेवा प्रधान बना लेने की साधना है। यही उपासना हमें मोह, आलस्य और स्वार्थ से ऊपर उठाकर श्रेष्ठता, सेवा और सदाचार के पथ पर ले जाती है।

सच्चा ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति वही है, जो अपने जीवन को पूर्णतः ईश्वर के हाथों में सौंप देता है। वह ईश्वर को केवल पूजा का विषय नहीं, बल्कि जीवन का केंद्र बना लेता है। ईश्वर के संकेतों पर चलना और अपने हर विचार, वाणी और कर्म को उसी की इच्छा के अनुरूप ढालना ही उसकी सच्ची सामर्थ्य है।

भक्ति केवल शब्दों की नहीं, बल्कि ऐसे गहरे प्रेम की है, जो पवित्र और निस्स्वार्थ हो। ऐसा प्रेम विनिमय का सौदा नहीं करता—वह त्याग, बलिदान और सर्वोच्च आदर्शों के लिए तत्पर रहता है। यही प्रेम व्यक्ति को स्थिर, शुद्ध और उच्च बनाता है। ईश्वरनिष्ठ जीवन का उद्‌देश्य केवल स्वयं की उन्नति नहीं, बल्कि पारस्परिक सहयोग और लोक-कल्याण है।

सच्चा भक्त ईश्वर में ही आत्मिक संतोष पाता है, अन्य किसी साधन में नहीं। ईश्वर का प्रेम अनंत है और वह अपने भक्त को सदैव प्रकाश, ज्ञान और सही मार्ग देने के लिए तत्पर रहता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में इस प्रेम को स्थिर बना लेता है, वह अपने सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुँचने में सफल होता है। समर्पण ही भक्ति का प्राण है।

यह केवल शरीर का नहीं, बल्कि मन, धन और विचार तीनों का पूर्ण अर्पण है। यही समर्पण साधक को ऐसा मनोबल देता है, जो कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी अडिग रहता है। सच्चा पुरुषार्थ तब ही फलता है, जब वह विद्या, गुण, चरित्र और पराक्रम के आधार पर खड़ा हो। यह मार्ग वही है, जिस पर प्राचीन ऋषि चलते आए और जो आज भी उतना ही अनिवार्य है।

भक्ति, प्रेम, त्याग और पुरुषार्थ—ये चारों मिलकर साधक को ऐसा व्यक्तित्व देते हैं, जो स्वयं के साथ-साथ समाज और विश्व के लिए भी प्रेरणा बनता है। यही है ईश्वरनिष्ठ जीवन का सार। ❑

एक व्यक्ति पत्नी और बच्चों को घर छोड़कर एक संत के पास पहुँचा और उनसे ईश्वरप्राप्ति का मार्ग पूछने लगा। अपने घर छोड़ने की कहानी संत को सुनाते हुए वो बोला—"महाराज! मेरी पत्नी और छोटा-सा बच्चा सो रहे थे। मेरे घर छोड़ते समय बच्चा रोने लगा तो मुझे लगा कि अब मैं नहीं भाग पाऊँगा। तभी मेरी पत्नी ने उसे छाती से लगा लिया तो वो चुप हो गया। मैं चुपचाप भाग आया और सीधे आपके पास आ गया।"

संत बोले—"बेटा! दो भगवान तो तेरे घर में ही हैं, जिन्हें छोड़कर तू भाग आया। जब तक तू उनकी सेवा नहीं करेगा, तब तक तेरा उद्धार कैसे होगा? त्याग कर्त्तव्यों का नहीं, कामना-वासना का किया जाता है।"

सद्गुरु संग साधना का मर्मबोध

तिरोतल को कई वर्ष गुरुप्रदत्त साधना विधान को अपनाते हुए बीत चुके थे, लेकिन आशातीत सफलता से वंचित अनुभव कर रहा था। अपने साधनात्मक यथार्थ व आंतरिक मनोभूमि से तिरोतल परिचित न हो, ऐसा भी नहीं था।

स्वाध्याय एवं आत्मचिंतन के प्रकाश में बहुत कुछ समझ भी आ जाता कि ऐसा क्यों हो रहा है, लेकिन सद्गुरु के अमृतवचनों के सिंचन की महती आवश्यकता तिरोतल हृदय की गहराइयों से अनुभव कर रहा था। आज गुरुकृपा स्वप्नलोक में दिव्य मार्गदर्शन के रूप में तिरोतल के अंतर्मन को प्रकाशित कर रही थी।

अपने सद्गुरु से मिलन की आशा लिए तिरोतल हिमालय की उपत्यिकाओं में प्रवेश कर चुका था, नीचे गंगा जी का निर्मल प्रवाह अविरल गति से अपने गंतव्य की ओर गतिमान था। जंगल में वन्य जीव उछल-कूद करते हुए प्रकृति की स्वच्छंद लय के साथ विचरण कर रहे थे।

मार्ग में हिमानियों से बने झरने तिरोतल को जीवन के चिरंतन शाश्वत प्रवाह का बोध करा रहे थे। प्रकृति के इस नीरव आंचल में तिलोतल के अंत:करण में जैसे बोध के स्वर फूट रहे थे। सद्गुरु मार्गदर्शन कर रहे थे कि जीवन के गोरखधंधे में जीवन-साधना का क्रम तूने सम्यक रूप से अपनाया ही कहाँ?

कुछ समय अवधि तक जोश में संपन्न अनुष्ठान खरगोश की दौड़ जैसे यत्न थे, जबकि कछुए की चाल से निर्धारित पथ पर निरंतर बढ़ते रहना था। संध्यावेला में उपासना की चिह्नपूजा भर से आत्मसाधना का क्रम सधने वाला नहीं।

सेवा के नाम पर चल रही अहंतुष्टि की क्रियाएँ भी जीवन-साधना की पूर्णता पर ग्रहण लगा रही थीं। उसे अंत:प्रेरणा हुई—इनके मध्य जीवन-साधना में कहीं चूक हो रही है तिरोतल, तू उसे पकड़।

तिरोतल को एहसास हो रहा था कि जीवन की भाग-दौड़ में अपने स्वार्थजनित कर्मों को ही पूजा मान बैठा था, उपासना के पलों में दो समय की चिह्नपूजा ही मन को संतोष देने वाला नित्यक्रम बना हुआ था।

हाथ में फिरते माला के मनकों संग किसी तरह संख्या पूरी हो रही थी। यथार्थ साधना का क्रम कहीं पीछे छूट रहा था। कोशिश नहीं हुई थी, ऐसा भी नहीं था।

जीवन के गोरखधंधे में तिरोतल कुछ इस कदर उलझ गया था कि साधना के मर्म का भेदन नहीं कर पा रहा था। आज बोध के स्वरों में सद्गुरु उसके सम्मुख साधना के मर्म का उद्घाटन कर रहे थे।

उसे अंत:प्रेरणा हुई कि उसे क्या करना है—हर राग-द्वेष, काम-क्रोधादि विकारों के चित्त में उभरने पर अपने सद्गुरु का स्मरण, आत्मचिंतन एवं एकत्व का अभ्यास करना। इस भाव साधना के साथ उपासना के पल फिर दो समय तक सीमित कर्मकांड भर न रहेंगे।

इन भावों के साथ हर व्यवहार एवं क्रिया सेवा-साधना का उपक्रम होगा, यज्ञ कर्म बनेगा और समूचा जीवन तप एवं योग से जुड़ते हुए सचेतन आत्मविकास का एक रोमांचक अनुभव सिद्ध होगा। □

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विचारशक्ति

सृष्टि ने प्रत्येक मनुष्य को जन्म के साथ ही एक अनुपम निधि प्रदान की है। यह निधि ऐसी अद्‌भुत संपदा है, जिसका मूल्य चुकाया नहीं जा सकता और न ही इसका क्षरण संभव है। इस अमूल्य निधि का नाम है—विचारशक्ति।

जिस प्रकार पारसमणि साधारण धातु को छूते ही उसे स्वर्ण में परिवर्तित कर देती है, उसी प्रकार विचारशक्ति भी साधारण जीवन को असाधारण बना देती है। यह मनुष्य को ऊँचाइयों तक पहुँचाने वाली शक्ति है। कोई चोर इसे चुरा नहीं सकता और कोई विपत्ति इसका हरण नहीं कर सकती। यह मानव जीवन की सबसे सुरक्षित निधि है।

मनुष्य के विचार यदि उच्चस्तरीय हों तो वह परिस्थितियों की कठिनाइयों के बीच भी सन्मार्ग पर अग्रसर होता है। इसके विपरीत यदि चिंतन भ्रष्ट हो, तो सुविधा और साधन होते हुए भी जीवन पतन की ओर चला जाता है। विचार ही साधना का आधार हैं और इन्हीं पर जीवन की दिशा एवं दशा निर्भर करती है।

संपन्नता, वैभव, यश, प्रतिष्ठा, शक्ति और प्रभाव—ये सब विचारों की ही देन हैं। जैसा चिंतन होगा, वैसी ही जीवनधारा बनेगी। जीवन की उपलब्धियाँ विचारों की गुणवत्ता पर ही आधारित होती हैं।

विचारशक्ति का महत्त्व पारसमणि से भी कहीं बढ़कर है। पारसमणि केवल धातु को स्वर्ण में बदल सकती है, परंतु विचारशक्ति व्यक्ति को साधारण-से-असाधारण, सीमित-से-असीम और नश्वर-से-अमरत्व की ओर ले जाती है।

विचारशक्ति की सूक्ष्मतम क्षमता यह है कि वह जीवन की दिशा निर्धारित करती है। यह न केवल लक्ष्य का संकेत देती है, बल्कि उसमें निरंतर प्रगति की प्रेरणा भी प्रदान करती है। यही वह परम निधि है, जो मनुष्य को उत्थान, उत्कर्ष और परम कल्याण की ओर अग्रसर करती है। ❑

आहारप्रभवो यस्तु रोगाश्चाहार सम्भवाः।
हिताहितविशेषाश्च विशेषः सुखदुःखयोः॥

—चरक संहिता-28/49

अर्थात उचित तरीके से किया गया भोजन, शरीर के समुचित विकास में सहायक होता है। इसके विपरीत अनुचित तरीके से किया गया भोजन विभिन्न व्याधियों का कारण बनता है, अतः भोजन का प्रयोग आवेश या अज्ञानतावश नहीं करना चाहिए।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

नचिकेता की आत्मज्ञान-विषयक उत्कंठा

कठोपनिषद् में नचिकेता और यमराज के बीच आत्मज्ञान-विषयक एक अद्‌भुत संवाद है, जिसमें आत्मा, ब्रह्म और जीवन-मृत्यु के रहस्यों पर विचार किया गया है और यमराज के द्वारा नचिकेता की आत्मज्ञान-विषयक जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है।

कठोपनिषद् में वर्णित यह कथा नचिकेता की कहानी से शुरू होती है जो एक छोटा-सा बालक होते हुए भी आत्मज्ञान का अभिलाषी है।

कथा के अनुसार नचिकेता एक सत्यनिष्ठ बालक था। वाजश्रवा ऋषि के तरुण पुत्र नचिकेता ने जब देखा कि उसके पिता यज्ञ में आए हुए ब्राह्मणों को दूध नहीं देने वाली बूढ़ी व दुबली गायें दान कर रहे हैं, तो उसे बहुत दुःख हुआ। उसने सोचा यह तो दान नहीं, मिथ्याचरण है। मैं और कुछ तो नहीं कर सकता, पर पिता को इस पाप से बचाने के लिए स्वयं को ही दान कर सकता हूँ। ऐसा सोचकर वह अपने पिता से बार-बार प्रश्न करने लगा, आखिरकार आप मुझे किसको दान कर रहे हैं, पिताजी! नचिकेता द्वारा बार-बार यही प्रश्न करने पर वाजश्रवा क्रोधित हो गए और बोले जा, मैं तुझे यमदेव को देता हूँ।

पिता के कथन की सत्यता की रक्षा के लिए नचिकेता यमदेव से—यमराज से मिलने यमलोक जा पहुँचा। यमराज उस समय यमलोक से बाहर थे। फिर भी नचिकेता तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर यमराज की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

जब यमराज आए और उन्होंने अपने सहायकों से यह सुना कि यह बालक तीन दिनों से भूखा-प्यासा रहकर उनकी प्रतीक्षा कर रहा है तो वे उसकी सत्यनिष्ठा से अत्यंत प्रभावित हुए। बोले—"पुत्र! तुम मुझसे तीन वर माँग लो।"

नचिकेता बोला—"मृत्युदेव! तीन वरों में से मैं प्रथम वर यही माँगता हूँ कि मेरे पिता जो क्रोध के आवेश में मुझे आपके पास भेजकर अब अशांत और दुःखी हो रहे हैं, वे मेरे प्रति क्रोधरहित, शांत चित्त और सर्वथा संतुष्ट हो जाएँ तथा आपके द्वारा अनुमति पाकर जब मैं घर जाऊँ, तब वे मुझे अपने पुत्र नचिकेता के रूप में पहचानकर पहले की तरह ही मुझसे प्यार करें और स्नेहपूर्वक व्यवहार व आचरण करें।"

यमराज ने तथास्तु (ऐसा ही हो) कहा और बोले—"तुमको मृत्यु के मुख से छूटकर घर लौटा हुआ देखकर मेरी प्रेरणा से तुम्हारे पिता बड़े प्रसन्न होंगे, तुमको अपने पुत्र रूप में पहचानकर तुमसे पूर्ववत् प्रेम करेंगे तथा उनका दुःख और क्रोध—सर्वथा शांत हो जाएगा। तुम्हें पाकर अब वे जीवन भर सुख की नींद सोयेंगे।"

नचिकेता बोला—"हे भगवन्! दूसरे वर के रूप में मुझे आप उस अग्निविद्या (यज्ञ) का उपदेश कीजिए, जिसके द्वारा लोग स्वर्ग, अमृतत्व-देवत्व को प्राप्त होते हैं।" यमराज बोले—"हे नचिकेता, स्वर्गदायिनी अग्निविद्या (यज्ञ) के विषय में मैं तुम्हें भली भाँति बतलाता हूँ। तुम इसको अच्छी तरह से सुनो।

"जो निष्काम भाव से अग्निविद्या (यज्ञ) का अनुष्ठान करता है, वह देहपात (मृत्यु) से पहले ही, जन्म-मृत्यु के पाश को तोड़कर शोकरहित होकर अंत में स्वर्गलोक के (अविनाशी ऊर्ध्वलोक के) आनंद का अनुभव करता है।"

प्रथम दो वर माँगने के बाद बालक नचिकेता ने तीसरा वर माँगा—"भगवन्! मुझे मृत्यु और आत्मा का ज्ञान दीजिए। कुछ लोग तो कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता। इस विषय में आपको जो अनुभव हो, वह मुझे बतलाइए।" एक तरुण बालक के मुख से ऐसा सुनकर यमदेव भी अचंभित रह गए।

यमदेव ने इस आखिरी वर को टालने की भरपूर कोशिश की और नचिकेता को मृत्यु-रहस्य और आत्मज्ञान के बदले संसार के सारे सुख, ऐश्वर्य देने का प्रलोभन दिया, पर नचिकेता को तो आत्मज्ञान ही चाहिए था। इससे कम उसे कुछ भी मंजूर न था। उसने भी अभीष्ट से पीछे न हटने की हठ ठान रखी थी।

नचिकेता की सत्यनिष्ठा और आत्मज्ञान पाने की उत्कंठा, अभिलाषा को देखते हुए यमदेव को भी झुकना पड़ा; क्योंकि नचिकेता को भौतिक सुख-संपदा का प्रलोभन देकर यमदेव उसकी कठिन परीक्षा ही ले रहे थे, जिसमें नचिकेता उत्तीर्ण हुआ।

यमराज बोले—"हे नचिकेता! तुम्हारी परीक्षा करके मैंने अच्छी तरह देख लिया कि तुम बड़े बुद्धिमान, विवेकशील तथा वैराग्य संपन्न हो और तुम अवश्य ही आत्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व को जानने और पाने के सर्वोत्तम अधिकारी हो। यह मनुष्य शरीर बहुत ही दुर्लभ है। यह शरीर ब्रह्म की नगरी है; क्योंकि आत्मा के रूप में परमात्मा इसी ब्रह्मनगरी में मनुष्य के अंतःकरण में रहते हैं।

"अपने हृदय में आत्मा के रूप में विराजमान परमात्मा का, ब्रह्म का ध्यान करने से व्यक्ति जन्म व मृत्यु के बंधन से मुक्त होकर शाश्वत सुख पाता है। शरीर के मरने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता; क्योंकि यह आत्मा शाश्वत, सनातन, पुरातन, अजर एवं अमर है।"

"परमात्मा का वास क्या सचमुच मनुष्य के हृदय की गुफा में होता है, भगवन्?"—नचिकेता ने पूछा।

यमदेव ने उत्तर दिया—"हाँ वत्स! मनुष्य का हृदय ब्रह्म को पाने का स्थान माना जाता है; क्योंकि आत्मा का निवासस्थान मनुष्य का हृदय है और आत्मा परमात्मा का ही स्वरूप अथवा अंश होने से परमात्मा का निवासस्थान भी है। व्यक्ति जब अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करके नित्य अपने हृदय में स्थित ब्रह्म का ध्यान करता है तब उसे अपने हृदय में, आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा की अनुभूति होती है। उसे आत्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व का बोध होता है।

"जो विवेकशील है, जिसने मन सहित अपनी समस्त इंद्रियों को वश में कर लिया है, जो सदैव पवित्र भावों को धारण करने वाला है, वही उस आत्मतत्त्व, आत्मज्ञान को जान पाता है।

"हे नचिकेता! मृत्यु से पूर्व जो जीवात्मा ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह जीवात्मा सदैव के लिए समस्त बंधनों से मुक्त हो जाता है, अन्यथा वह अनंतकाल तक विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अपने कर्मों का फल भोगता रहता है। आत्मज्ञान ही सभी प्रकार के दुःखों और बंधनों से मुक्ति व शाश्वत सुख पाने का उपाय है।"

इस प्रकार यमराज से तीन वर प्राप्त करने के बाद नचिकेता ने यमराज को प्रणाम कर अपने घर को प्रस्थान किया।

कठोपनिषद् की यह कहानी हमें बताती है कि मनुष्य जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य आत्मज्ञान प्राप्त करना है और आत्मज्ञान प्राप्त होने पर ही व्यक्ति को आनंद प्राप्त होता है।

यदि नचिकेता की तरह आत्मज्ञान पाने की उत्कंठा, अभिलाषा, दृढ़ निश्चय, अटूट निष्ठा और अटल संकल्प हो तो कोई भी आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। □

व्यक्तित्व विकास के चार चरण

भारतीय ऋषियों द्वारा दी हुई जीवन-व्यवस्था को आश्रम-व्यवस्था कहते हैं और पुरातन काल से ही आश्रम-व्यवस्था भारतीय समाज व भारतीय जीवनशैली की आधारशिला रही है। 'आश्रम' शब्द 'श्रम' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है—परिश्रम करना अथवा प्रयास करना।

आश्रम का आशय उन विभिन्न स्तरों से है, जहाँ व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के समग्र विकास के द्वारा जीवन को सुखी, समुन्नत, समृद्ध व सफल बनाने के लिए अनेक प्रकार से श्रम अथवा प्रयास करना पड़ता है। उसे जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चार पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए श्रम, प्रयास करने पड़ते। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के लिए ही चार आश्रम की व्यवस्था की गई थी।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य के सर्वांगीण विकास की यह आश्रमपद्धति एक समग्र और सफल सामाजिक व्यवस्था थी, जिसकी आचार संहिता बनाने वाले ऋषि-मनीषियों को मानव जीवन की गहरी जानकारी थी। वे यह भली भाँति जानते थे कि मानवीय चिंतन एवं आचरण पर यदि नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं का अंकुश न हो तो पशु और मनुष्य के बीच विशेष अंतर नहीं रह जाएगा।

विरले होते हैं, जो मानव जीवन की गरिमा समझते हैं और तदनुरूप आचरण करते हैं, अन्यथा अधिकांश जनप्रवाह की दिशा-धारा में बहते हैं। उन्हें अपनी महत्ता का भान नहीं होता और न ही वे अपने जीवनलक्ष्य के प्रति जागरूक होते हैं। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए गंभीर नहीं होते हैं। उनमें आत्मनियंत्रण का अभाव होता है।

ऐसे में यदि नैतिक, सामाजिक, धार्मिक बंधन और मर्यादाएँ शिथिल हों तो मनुष्य में पशु प्रवृत्तियों के उभरने और उच्छृंखलता बढ़ने की खुली छूट मिल जाएगी। मनुष्य की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, शरीरगत एवं मनोगत वासनाएँ भी मनुष्य को परेशान करती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनमें कुछ ऐसी होती हैं, जिनकी परितृप्ति भी आवश्यक है, अन्यथा अड़ियल घोड़े की तरह वे प्रगति मार्ग पर अवरोध बनकर खड़ी रहती हैं और मनुष्य को आगे नहीं बढ़ने देतीं, कुछ विशेष कार्य नहीं करने देतीं।

उचित, आवश्यक इच्छाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति होती चले और अनुचित, अनावश्यक, हानिकर इच्छाओं, आकांक्षाओं से मुक्ति मिले और मनुष्य अपने जीवनलक्ष्य की ओर क्रमशः बढ़ता चले, इसके लिए व्यक्तित्व निर्माण, आत्मनिर्माण, आत्मपरिष्कार की महती आवश्यकता पड़ती है। यह प्रयोजन पुरातन काल में जिस माध्यम से संपन्न होता था, उसे ही 'आश्रम' के नाम से जाना जाता है। उस व्यवस्था को ही आश्रम-व्यवस्था कहते हैं।

भारतीय संस्कृति ने मनुष्य जीवन को सौ वर्षों का मानकर 25-25 वर्षों के चार भाग बना दिए और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास—इन चार आश्रमों में मनुष्य जीवन को विभक्त कर दिया है। भारतीय मनीषियों द्वारा दी गई यह जीवन-व्यवस्था आश्रम-व्यवस्था के रूप में जानी गई। प्रथम आश्रम है—ब्रह्मचर्य आश्रम। एक से 25 वर्ष

तक की आयु को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया। प्रारंभिक 25 वर्ष मनुष्य के शरीर, मन और बुद्धि के विकास के लिए रखे गए हैं।

इन वर्षों में युवक व युवती को संयमी जीवन बिताकर आने वाले सांसारिक जीवन के उपयुक्त शक्ति-संचय करना पड़ता था। इसे भावी जीवन की, मनुष्य जीवन की नींव भी कहते हैं। यदि नींव कमजोर हो तो इमारत कमजोर होती है और कभी भी धराशायी हो सकती है। अपने भावी जीवन की मजबूत नींव रखने के लिए बालक-बालिकाएँ, युवक-युवतियाँ ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए अपना शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास करते थे।

इस आश्रम का आरंभ उपनयन एवं वेदारंभ संस्कार से होता था। इस आश्रम में रहते हुए बालक संसार के प्रलोभनों से दूर, संयमी और शुद्धतापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए अपने गुरु की छत्रछाया में शिक्षा ग्रहण करता था। वह सूर्योदय से पूर्व उठ कर, स्नानादि से निवृत्त होकर योग, व्यायाम, यज्ञ, ध्यान करता था। शुद्ध, सात्त्विक भोजन ग्रहण करता था, सद्ग्रंथों का पाठ व स्वाध्याय करता था और संध्याकाल हलका आहार लेकर स्वाध्याय व शयन करता था। इस रूप में वह एक उत्कृष्ट व स्वस्थ जीवनशैली में जीवन जीता था।

यही वह आश्रम था, जहाँ विद्यार्थी हर प्रकार की शिक्षा ग्रहण करता था और शिक्षा ही नहीं, वह विद्या भी ग्रहण करता था; क्योंकि विद्या के बिना शिक्षा अधूरी मानी जाती है। शिक्षा हमें विविध विषयों की जानकारी देती है, वहीं विद्या हमें नैतिक-आध्यात्मिक अर्थात मानवीय मूल्यों को जीवन में धारण कर तदनुरूप पवित्र जीवन जीना सिखाती है।

यहाँ व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाती थी। इस आश्रम का उद्देश्य था विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, चरित्र का निर्माण करना, उन्हें स्वावलंबी बनाना और उन्हें गृहस्थ आश्रम के लिए तैयार करना। समावर्तन संस्कार के साथ ही इस आश्रम की समाप्ति हो जाती थी।

द्वितीय आश्रम है—गृहस्थ आश्रम। 25 वर्ष पूर्ण होने पर व्यक्ति इस आश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम में व्यक्ति विवाह कर प्रविष्ट होता था। इस आश्रम में स्त्री व पुरुष, दोनों का ही समान महत्त्व होता था। इस आश्रम में रहकर व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति के लिए प्रयास करता था।

गायत्र्यास्तु परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥

अर्थात नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़कर बचाने वाली माँ गायत्री के समान पवित्र करने वाली, इस धरती व स्वर्ग में कोई शक्ति नहीं है।

इस आश्रम में पति-पत्नी धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए पूरी जिम्मेदारी से अपने नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करते थे। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरा करते थे। अपने व्यवसाय में अभिरुचि लेकर आनंदमय जीवन व्यतीत करते थे।

वे धर्माचरण द्वारा गृहस्थ जीवन के सुख प्राप्त करते थे। वे भौतिक उत्कर्ष के साथ-साथ आत्मकल्याण एवं लोकहित के कार्य भी करते रहते थे। गृहस्थ आश्रम को चारों आश्रमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है; क्योंकि यह अन्य आश्रमों का आधार है। ऋषियों ने इस आश्रम की महत्ता के संबंध में कहा है—''जिस प्रकार सभी जीव वायु

के सहारे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ आश्रम से जीवन प्राप्त करते हैं।''

तीसरा आश्रम है—वानप्रस्थ आश्रम। 50 से 75 वर्ष तक की आयु वानप्रस्थ आश्रम के लिए निर्धारित है। वानप्रस्थ का अर्थ है—'वन की ओर प्रस्थान करना।' पचास वर्ष की अवस्था प्राप्त कर मनुष्य इस आश्रम में प्रवेश करता है।

मनुस्मृति में इस आश्रम के संबंध में कहा गया है कि जब गृहस्थ जीवन का काल एवं कर्त्तव्य पूर्ण हो जाए, संतान के भी संतान हो जाए, वृद्धावस्था का आरंभ हो जाए, तो मनुष्य को वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना चाहिए। इस आश्रम में मनुष्य को माया, मोह का बंधन त्यागकर पवित्र और सेवायुक्त जीवन व्यतीत करना, इंद्रियों पर नियंत्रण करते हुए, निष्काम कर्म करते हुए स्वयं को मोक्ष की प्राप्ति के लिए तैयार करना होता था।

उसे जप, तप, ध्यान के द्वारा भगवत्प्राप्ति के लिए प्रयास-पुरुषार्थ करना होता था। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय करना, समाज व राष्ट्र की निस्स्वार्थ भाव से सेवा करना वानप्रस्थी का मुख्य कर्त्तव्य होता था। इस आश्रम में रहकर मनुष्य सामाजिक सेवा और समाज-कल्याण के कार्यों में निरत रहकर स्वयं को संन्यास आश्रम के लिए तैयार करता था। जैसे ही मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होता था, उसी समय वह सभी अधिकार और संपदा अपने परिवार के युवावर्ग को सौंप देता था।

युवावर्ग को उचित समय पर अधिकार प्राप्त होने से पारिवारिक संघर्षों की भी संभावना समाप्त हो जाती थी। पूज्य गुरुदेव स्पष्ट करते हैं कि उम्र ढलने पर सांसारिक कार्यों से हटना चाहिए। धीरे-धीरे भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ कम करते जाना चाहिए। 50 से 75 वर्ष तक की आयु में गृहस्थ भार से मुक्त होकर समाज-सेवा का विधान है और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिम्मेदारियों से मुक्ति पाना मनुष्य की मानसिक शांति के लिए भी परम उपयोगी है। ऐसा करने से पारमार्थिक जीवन के लिए पर्याप्त समय निकल आता है।

वानप्रस्थ का अर्थ यह भी है कि घर पर रहते हुए ही मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करे, संयम का अभ्यास करे, फिर धीरे-धीरे अपनी जिम्मेदारी अगली पीढ़ी के हाथों सौंपकर जनसेवा के लिए निकल जाए। पूर्ण परिपक्व व्यक्ति ही घर से बाहर निकलकर जनसेवा के कार्य को कुशलतापूर्वक कर सकता है।

चौथा आश्रम है—संन्यास आश्रम। मनुष्य जीवन में 75 से 100 वर्ष की आयु को एक संन्यासी की तरह जीना चाहिए। इस अवस्था में आत्मविस्तार समस्त विश्व ही नहीं, चराचर मात्र के लिए हो जाता है।

वह इस विश्व-ब्रह्मांड को अपना परिवार मानता है। उसके अंतःकरण में प्राणिमात्र की सेवा के लिए प्रबल भावनाएँ जाग पड़ती हैं। वह जप, तप, ध्यान, भक्ति के द्वारा भगवत्प्राप्ति की ओर; मोक्ष की ओर तेजी से अग्रसर होता जाता है। वह संसार के माया, मोह से मुक्त होकर जीता है। वह स्वयं को सबमें और सबको स्वयं में देखता है। वह न तो किसी से घृणा करता है और न ही किसी से मोह।

इस आश्रम की अवधि मृत्युपर्यंत होती है। मनु, याज्ञवल्क्य और जाबालि का कथन है कि यदि गृहस्थ आश्रम में ही मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं पर, इंद्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है तो वह वानप्रस्थ में प्रविष्ट हुए बिना ही संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो सकता है। आज विकृत जीवनशैली के कारण 100 वर्ष की आयु जीना सबके लिए संभव नहीं, पर संयमित जीवन जीने

वाले लोग आज भी 100 या उससे अधिक की आयु तक जीते हुए देखे जाते हैं।

हमारी आयु भले ही 100 वर्ष की नहीं हो, पर तब भी उसमें हम चारों आश्रमों के सिद्धांत को अवश्य जी सकते हैं और अपने जीवन को सुखी, समुन्नत, समृद्ध और सफल बना सकते हैं।

मनुष्य इन चारों आश्रमों के सिद्धांतों को जीवन में जीते हुए भौतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त हो सकता है। यदि भारतीय जीवन को इन चार आश्रमों के सिद्धांतों से संस्कारित न किया गया होता तो यहाँ भी अन्य देशों की तरह शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता, आध्यात्मिकता, उत्कृष्टता और आदर्शवादिता का अभाव होता। यहाँ के लोग वह सुख, समृद्धि, शांति और आनंद न प्राप्त कर सके होते, जिसके लालच में अन्य देशों के लोग भी यहाँ आते रहे हैं और भारतीय जीवनशैली को अपनाते रहे हैं।

इस जीवनपद्धति में कोई भी त्रुटि नहीं, कोई शिकायत नहीं। संपूर्ण रूप से व्यवस्थित जीवन का नाम है—आश्रम-व्यवस्था। यह जीवनपद्धति की उत्कृष्ट कला का विकास है। चार आश्रम वस्तुतः व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के चार चरण हैं, जिनके द्वारा मनुष्य मानवीय गुणों एवं क्षमताओं का विकास करते हुए अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

ऋषिप्रणीत इस आश्रम-व्यवस्था का महत्त्व जितना प्राचीनकाल में हुआ करता था, उतना ही अब भी है। ❑

''जो हर दिशा से निराश हो उठते हैं, उन्हें किसका सहारा लेना चाहिए गुरुवर!'' शिष्यों ने प्रश्न किया।

''ईश्वर ही हरेक का सहारा हैं वत्स! हर क्षण, उन्हीं के सहारे से जीवन को श्रेष्ठ पथ पर लेकर चलना चाहिए।'' गुरु ने उत्तर दिया।

''ईश्वर का संरक्षण हमें मिले, इस हेतु क्या करने की आवश्यकता है?'' शिष्यों का अगला प्रश्न था।

गुरु बोले—''वत्स! उपासना, साधना व आराधना ये वे उपाय हैं, जिनके अवलंबन से ईश्वर, जीवात्मा में प्रवेश करते हैं तथा उसे देवोपम चिंतन-चरित्र विनिर्मित करने की प्रेरणा देते हैं। इनका आधार लेकर चलने वालों को फिर किसी का सहारा नहीं लेना पड़ता। उन पर हर दिशा में सहयोग अनायास ही बरस पड़ता है।''

शिष्यों की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

राष्ट्रीय पक्षी मोर

मोर अपनी सुंदरता एवं सांस्कृतिक महत्त्व के कारण भारत का राष्ट्रीय पक्षी है, जो देश के व्यापक हिस्से में पाया जाता है। मोर प्राय: खेतों व वनों के आस-पास विचरण करते हैं, जहाँ उन्हें उचित सुरक्षा एवं आहार आदि उपलब्ध रहते हैं। मोर का जीवन कई रोचक, रोमांचक एवं ज्ञानवर्द्धक तथ्यों से भरा हुआ है, जिनका वर्णन सुधी पाठकों के हित में प्रस्तुत है।

मोर की देशभर में व्यापक उपस्थिति एवं सांस्कृतिक महत्त्व को देखते हुए भारत सरकार ने 26 जनवरी, 1963 को इसे राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया। सनातन धर्म में मोर को पवित्र पक्षी माना जाता है। यह भगवान कार्तिकेय का वाहन है। भगवान श्रीकृष्ण मुकुट में मोर पंख धारण किए रहते हैं।

महाकवि कालिदास द्वारा मोर का प्रकृति एवं मानवीय भावनाओं के गहरे प्रतीक के रूप में अत्यंत मनोरम वर्णन मिलता है। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के सिक्के में मोर एक महत्त्वपूर्ण घटक था। मोर के धार्मिक-सांस्कृतिक महत्त्व के कारण इसको मारना व इसका भक्षण करना महापाप माना गया है। नर और मादा मोर में अंतर स्पष्ट रहता है।

मोर का आकार मोरनी से बड़ा होता है। नर मोर बहुत लंबी और रंगीन पूँछवाला होता है, जिसके पंखों पर नीले, हरे और सुनहरे रंगों से युक्त आँखों जैसी आकृतियाँ बनी होती हैं। इसके पंखों की संख्या 150 से 200 के लगभग होती है। इसकी सामान्यतया लंबाई 6 फीट और पंख फैलाकर ऊँचाई 5 फीट तक हो जाती है। मोरनी का रंग सादा भूरा होता है एवं उसकी लंबी पूँछ नहीं होती। मोरनी का साधारण भूरा रंग शिकारियों से छिपने में सहायक रहता है।

रंग-बिरंगे और हंस के आकार के इस पक्षी के सिर पर पंखों की कलगी, आँख के नीचे एक सफेद धब्बा होता है तथा गरदन लंबी और पतली होती है। नर के सिर पर बड़ी कलगी और मादा के सिर पर छोटी कलगी होती है।

मानसून के मौसम में काली घटा छाने पर मोर अपने पंख फैलाकर नृत्य करते हैं। मोर का पूँछ के पंखों को फैलाकर किया जाने वाला यह प्रेमालाप-नृत्य एक बहुत ही सुंदर एवं मनमोहक दृश्य रहता है। जब वह इन पंखों को फैलाता है तो ऐसा लगता है कि मानो इसने हीरों से जड़ी शाही पोशाक पहन रखी हो। आश्चर्य नहीं कि मोर को पक्षियों का राजा कहा जाता है।

मोर की आवाज बहुत तेज और तीखी होती है, जो प्राय: वर्षा होने से पहले सुनाई देती है। नर मोर की बहुत ही तेज आवाज को दूर-दूर तक सुना जा सकता है। नर मोर अपनी आवाज से मादा मोर का ध्यान आकर्षित करते हैं। इसके अतिरिक्त नर मोर अपनी आवाज के माध्यम से अन्य नर मोरों को भी चुनौती देते हैं, जिनसे उनकी प्रतिस्पर्धा होती है और सबसे सशक्त नर मोर जीतता है।

मोरनी की कलगी, तैरते हुए मुकुट जैसी दिखती है, जो प्रजनन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मोरनियों में ये मात्र सजावटी पंख नहीं होते, बल्कि संवेदी अंग का भी काम करते हैं। जब नर मोर मादाओं को आकर्षित करने के लिए पूँछ

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

झटकते हैं तो मादा इस प्रदर्शन को देखती है और अपनी कलगी की तरंगों को अनुभव करती है।

मोर मुख्यता नीले रंग में पाया जाता है, लेकिन यह सफेद, हरे व जामुनी रंग का भी हो सकता है। मोर विश्व का सबसे बड़ा उड़ने वाला पक्षी है। भारी, लंबी पूँछ के बावजूद मोर छोटी दूरी तक उड़ सकते हैं। भारी होने के कारण मोर कम ऊँचाई तक उड़ पाते हैं और वे बहुत देर तक हवा में नहीं रह सकते।

मोर आवश्यकता पड़ने पर ही उड़ान भरते हैं और तेज गति से उड़ते हैं। वे मुख्य रूप से शिकारी जानवरों से बचने के लिए ऊँचे स्थानों पर उड़कर बैठ जाते हैं। आश्चर्य नहीं कि रात को इन्हें पेड़ों पर, भवनों की छतों पर या जमीन से ऊपर कहीं भी बैठना पसंद होता है।

मोर वन्यक्षेत्रों के किनारों व कृषिक्षेत्रों में रहने के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित होते हैं। जब घोंसला बनाने की बात आती है तो ये भूमि पर घोंसला बनाना पसंद करते हैं। मोरनी धरती पर एक सुरक्षित स्थान पर उथला गड्ढा खोदती है और उसे टहनियों, पत्तों व पंखों से ढक देती है, ताकि अंडों के लिए एक सुरक्षित जगह बन जाए।

मोरनी एक समय में 3 से 5 अंडे देती है, जिनसे लगभग 1 माह के बाद चूजे निकलते हैं। जब मोर के चूजे अंडों से बाहर निकलते हैं, तो कई माह तक नर और मादा बच्चे बिलकुल एक जैसे दिखते हैं।

नर मोर के बच्चों में रंग दिखना लगभग 3 माह के पश्चात प्रारंभ होता है, 1 वर्ष के भीतर ये किशोर अवस्था के पंख प्राप्त कर लेते हैं और 3 वर्ष की आयु में पूरी तरह से वयस्क होने पर उनकी मनोरम इंद्रधनुषी पूँछ विकसित हो जाती है, जो लगभग 6 वर्ष की आयु में अपने पूर्ण सौंदर्य तक पहुँच जाती है। मोर औसतन 15 से 25 वर्ष तक जीवित रहता है।

मोर एक शरमीला पक्षी है, लेकिन अपनी रक्षा के लिए यह काफी सतर्क रहता है। मोर को साँपों का दुश्मन माना जाता है एवं ये साँपों के प्रति बहुत आक्रामक होते हैं। साँपों को मोर अपने इलाके में रहने नहीं देते। अगर मोर को अपने इलाके में कोई साँप मिल जाए तो वे उससे जबरदस्त लड़ाई करते हैं और जहरीले साँपों से भी लड़कर उन्हें मार देते हैं और खा भी जाते हैं।

मोर एक सर्वहारी पक्षी है, जो कीड़े-मकोड़े, अन्न, फल, बीज, छिपकलियों और छोटे सर्पों को खा जाता है। यह हानिकारक कीड़े-मकोड़े खाता है, इसलिए इसे किसानों का अच्छा मित्र भी कहा जाता है।

मोर के दौड़ने की गति 16 किलोमीटर प्रति घंटे की होती है। मोर तैर नहीं सकता, इसका कारण इसके पैर हैं। तैरने के लिए जालीदार पंजे आवश्यक होते हैं, जो पक्षियों को सक्रिय रूप से तैरने में सहायक होते हैं। साथ ही मोर के पंख भी तैरने में सहायक नहीं होते।

मोर सामाजिक पक्षी है, जो झुंड बनाकर रहते हैं। एक झुंड में 6 से 10 मोर रहते हैं। नर मोर अपने क्षेत्र की रक्षा करते हुए अन्य नर मोरों से लड़ाई करते हैं और अपनी मादा को सुरक्षित रखते हैं। मोरनी अपने बच्चों की देख-भाल करती है और उन्हें खाना, चुगना व उड़ान भरना आदि सिखाती है।

इसके अतिरिक्त मोर एकदूसरे के साथ संवाद करते हैं, जिससे उनका सामाजिक बंधन सुदृढ़ होता है। मोर-पंख को ज्योतिष व वास्तु के अनुसार बहुत शुभ माना जाता है। ऐसा मानते हैं कि इनसे नकारात्मक ऊर्जा दूर होती है, सकारात्मक ऊर्जा

का संचार होता है तथा सुख-समृद्धि में वृद्धि होती है। घरों में वास्तु दोष कम करने के साथ ये मानसिक शांति प्रदान करने में सहायक माने जाते हैं। मोर-पंख आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

हर वर्ष प्रजनन के मौसम के ठीक पश्चात नर मोर अपनी पूँछ के पंख गिरा देता है। 2 सप्ताह के भीतर ही पूँछ के सारे पंख झड़ जाते हैं, जिन्हें आसानी से इकट्ठा किया जा सकता है। ज्ञातव्य हो कि मोर-पंख धूल व पसीने को नहीं पकड़ता, इसलिए भी उन्हें पवित्र माना जाता है। इस तरह मोर एक आकर्षक एवं रोचक पक्षी है, जिसे अपनी विशेषताओं के कारण राष्ट्रीय पक्षी का दर्जा प्राप्त है।

विश्व में सबसे अधिक मोर भारत में पाए जाते हैं, जिनकी संख्या अनुमानित पचास लाख है। इन्हें आईयूसीएन रेड लिस्ट में, न्यूनतम चिंताजनक श्रेणी में रखा गया है और इनकी संख्या अभी स्थिर मानी जाती है। मालूम हो कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 की अनुसूचित-I के अंतर्गत मोर को उच्चतम स्तर की सुरक्षा प्राप्त है। मोर को मारना इस अधिनियम के अंतर्गत एक अपराध है, जिसके लिए 7 वर्ष तक की सजा व जुरमाना हो सकता है।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण मोर को व्यापक स्तर पर लोगों से सुरक्षा प्राप्त है। साथ ही वे वन्य किनारों व कृषि क्षेत्रों के अनुकूल स्वयं को ढालने में सक्षम हैं। हालाँकि जनसंख्या बढ़ने के कारण कई राज्यों के किसानों के लिए समस्या उत्पन्न हो रही है तो वहीं अवैध शिकार, पंखों की तस्करी, कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग और प्राकृतिक आवास के नष्ट होने के कारण मोर अस्तित्व के संकट का सामना कर रहा है।

किसानों के मित्र और राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक इस सुंदर एवं मनोरम पक्षी का संरक्षण हमारा पावन दायित्व है, जिसमें हर नागरिक को अपना योगदान देना चाहिए। □

भगवान बुद्ध के संघ में रहने वाले भिक्षु विनायक को प्रवचन देने की लत पड़ गई। वे लोगों के समूह जबरन एकत्रित कर लेते और उन्हें लंबे-लंबे उद्बोधन देने आरंभ करते। भगवान बुद्ध को इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने भिक्षु विनायक को समीप बुलाया व उनसे प्रश्न किया—"वत्स! यदि कोई ग्वाला सड़क से आती-जाती गायों की गिनती करे तो क्या वह उनका स्वामी बन जाएगा?"

भिक्षु विनायक ने उत्तर दिया—"नहीं भगवन्! ऐसा कैसे संभव है? गोवंश का स्वामी बनने के लिए तो गायों के उस समूह की देख-भाल करना आवश्यक है?"

भगवान बुद्ध गंभीर हुए और बोले—"वत्स! ऐसे ही धर्मप्रचार के लिए धर्माचरण आवश्यक है, उन विषय पर उद्बोधन नहीं। तुम धर्म को जीवन में उतारो और यही सब लोगों के लिए प्रेरणा का साधन बनने दो।"

भिक्षु विनायक को अपनी भूल महसूस हुई और धर्माचरण का पथ अपनाया।

एक समय में एक कार्य

एक समय में एक कार्य जीवन के लक्ष्य एवं चुनौतियों के सुप्रबंधन का एक कौशल है, जिससे कि जीवन अनावश्यक तनाव एवं दबाव से मुक्त रह सके। यह जीवन के दीर्घकालीन कार्यों को छोटे टुकड़ों में तोड़कर वर्तमान में क्रियान्वित होने योग्य कार्य को हाथ में लेने की युक्तिसंगत विधा है। किसी एक बिंदु पर मन की एकाग्रता, प्राण का प्रवाह, भावनाएँ एकजुट होने पर ही संकल्प मूर्त रूप लेता है।

विभिन्न दिशाओं में बिखरी हुई ऊर्जा एवं मनोयोग के आधार पर जीवन के किसी भी क्षेत्र में अपेक्षित सफलता की आशा नहीं की जा सकती। एक समय में एक ही कार्य करने से व्यक्ति की चिंतन-चेतना उसी ध्येय पर केंद्रित रहती है और कम समय में ही व्यक्ति को आशातीत सफलता मिलती है। एक ही कार्य पर केंद्रित रहने से व्यक्ति वर्तमान में जीता है।

कार्य यदि बड़ा हो तो उसे छोटे-छोटे लक्ष्यों में तोड़ सकते हैं और प्राथमिकता के आधार पर इन्हें पूर्ण कर सकते हैं। छोटे-छोटे कार्यों को पूरा करते हुए उपलब्धियों से उत्पन्न संवेग-बढ़े कदम उठाने की क्षमता देगा और सफलता की यात्रा सुगम होगी। राह की चुनौतियों के साथ नए अनुभवों के लिए भी तैयार रहना श्रेष्ठ रहता है।

इसके साथ मार्ग में की गलतियों से सीखें और यात्रा का आनंद लें। केवल लक्ष्य की ही चिंता में न रहें। अपनी वर्तमान यात्रा का पूरा आनंद लें। यदि कार्य कठिन हो व नया हो, तो अपने सहजता के क्षेत्र से बाहर निकलने का साहस बटोरें और सही दिशा में कूद पड़ें। स्मरण रखें कि हजार मील की यात्रा एक कदम से ही शुरू होती है।

नित्य का न्यूनतम सुधार भी समय के साथ आश्चर्यजनक परिणाम ला सकता है। अत: अपने सामने के कदम पर ध्यान रखें, न कि पूरी सीढ़ी पर। थाली का भोजन एक समय में एक निवाले के साथ ही शुरू होता है, लेकिन एक-एक निवाले के साथ कुछ ही मिनट में पूरा खाना समाप्त हो जाता है।

इसी तरह अपने लक्षित ध्येय में छोटे-छोटे कदमों के साथ आगे बढ़ते हुए, अपने प्रयास की निरंतरता बनाए रखें। याद रखें, महान कार्य किसी एक प्रेरणा के आवेग में संपन्न नहीं होते, बल्कि छोटे-छोटे सफल प्रयासों की शृंखला के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम रहते हैं। इसके कोई माने नहीं रहते कि आप कितना धीरे चल रहे हैं, जब तक कि आप चलते रहते हैं और रुकते नहीं। कदम-दर-कदम मंजिल की दिशा में चलते रहें, आप एक दिन मंजिल तक अवश्य ही पहुँच जाएँगे। □

आत्मा की पुकार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की है। वह अंधकार से प्रकाश की ओर जाना चाहता है। तम ही अंधकार और सत् ही प्रकाश है। अंधकार को त्यागने और प्रकाश को धारण करने का यह प्रयत्न ही 'साधना' है।

—परमपूज्य गुरुदेव

पर्व-त्योहार — एक सामाजिक संस्कार

व्यक्ति के व्यक्तिगत दृष्टिकोण का परिष्कार करने के लिए जिस प्रकार व्यक्तिगत व्रत-उपवास, पूजा-उपासना आदि की व्यवस्था है, पारिवारिक रीति-नीति को परिष्कृत करने व उत्कृष्ट बनाए रखने के लिए पारिवारिक समारोह व संस्कार प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार समाज को सभ्य, सुसंस्कृत, समुन्नत और सुविकसित बनाए रखने के लिए अर्थात सामाजिक संस्कार के लिए देव संस्कृति में पर्व-त्योहारों की परंपरा विकसित की गई है।

समाज को संस्कारित करने के लिए समाज में सामूहिकता, ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, परमार्थ-परायणता, देशभक्ति, लोक-मंगल जैसी सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं। इसी प्रयोजन के लिए देव संस्कृति में पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। पर्व-त्योहार को सामाजिक संस्कार की प्रक्रिया ही समझना चाहिए। पर्व-त्योहार सामाजिक संस्कार के साधन हैं।

साधना से व्यक्तित्व, संस्कारों से परिवार और पर्वों से समाज का स्तर ऊँचा बनाने की पद्धति दूरदर्शितापूर्ण है, इसे हजारों-लाखों वर्षों तक आजमाया जाता रहा है। पर्वों की रचना इसी दृष्टि से हुई है कि प्राचीनकाल की महान घटनाओं एवं महान प्रेरणाओं का प्रकाश जनमानस में भावनात्मक एवं सामूहिक वातावरण के साथ उत्पन्न किया जाए। मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील प्राणी है। दूसरों को कोई शुभ काम करता देखकर उसके मन में वैसा ही काम करने की इच्छा स्वत: उत्पन्न होती है।

यही मूल कारण था कि सामूहिक आयोजनों के रूप में पर्वोत्सवों का प्रचलन किया गया। लोकमानस के परिष्कार हेतु, सामाजिक संस्कार हेतु, समाज में सत्प्रवृत्ति विस्तार हेतु, श्रेष्ठ परंपरा स्थापना हेतु ही पर्व-त्योहारों का विधान देव संस्कृति में रखा गया है। यह व्यवस्था इतनी सुनियोजित और वैज्ञानिक है कि इसकी उपादेयता से इनकार नहीं किया जा सकता।

हमारे यहाँ होली, दीपावली, दशहरा और गंगास्नान आदि के जो पर्व-त्योहार नियत किए गए हैं, उनका विशेष उद्देश्य यही है कि लोग परस्पर प्रेमपूर्वक मिलें और सामूहिकता की भावना को दृढ़ बनाएँ। धर्मधारणा को लोगों के जीवन में मात्र उपदेशों से नहीं उतारा जा सकता।

व्यक्ति को अध्यात्म का मर्म समझाने एवं सही शिक्षा देने और सन्मार्ग पर चलाने हेतु यही ऋषिप्रणीत मार्ग है। धार्मिक कथाओं के कथन-श्रवण द्वारा सत्संग एवं पर्व-त्योहारों पर स्वास्थ्य मनोरंजन जैसे दीपावली पर्व के माध्यम से अपने अंतस् की ज्योति को प्रज्वलित कर अपने जीवन में प्रकाश फैलाना, लक्ष्मी के उपार्जन और उपयोग की मर्यादा का बोध होना, गो-संवर्द्धन हेतु काम करना आदि उद्देश्य शामिल हैं, वैसे ही गीता जयंती मनाने का उद्देश्य है—जीवन में गीता के कर्मयोग का पालन करना और कर्मयोग का समारोहपूर्वक प्रचार-प्रसार करना।

वसंतोत्सव का संदेश है सदैव उल्लसित, प्रफुल्लित रहना, साहित्य, संगीत, कला को सही दिशाधारा देना। शिवरात्रि का उद्देश्य है भगवान शिव के प्रतीक में जिन सत्प्रवृत्तियों का समावेश है, उनका रहस्य समझना-समझाना और स्वयं के

भीतर सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की प्रवृत्ति विकसित करना।

होली का उद्देश्य है पतझड़ के कूड़े-करकट को जलाना अर्थात अंत: की मलिनता को धोकर जीवन में सात्त्विक गुणों व खुशियों के रंग भरना और प्रह्लाद की कथा का विशेष रूप से स्मरण करना और आपस में ईर्ष्या, द्वेष, मनभेद भुलाकर, मिटाकर उल्लास, उत्साह की उमंगभरी अभिव्यक्ति प्रदर्शित करना।

गंगा दशहरा-गायत्री जयंती मनाने का उद्देश्य है—भगीरथ के उच्च उद्देश्य एवं तप की सफलता से प्रेरणा लेना, आद्यशक्ति गायत्री की उपासना में निरत रहकर अपने अंतस् में ज्ञान की गंगा प्रवाहित करना आदि।

व्यास पूर्णिमा-गुरु पूर्णिमा पर्व मनाने का उद्देश्य है गुरु के उपदेशों का पालन करना और गुरुतत्त्व के माध्यम से अपनी श्रद्धा—भावना को विकसित कर भगवत्प्राप्ति की ओर अग्रसर होना और जीवन में पूर्णिमा की तरह पूर्णता को प्राप्त करना, वहीं श्रावणी-रक्षाबंधन पर्व का संदेश है भूलवश हुए बड़े पापों का प्रायश्चित और ऋषिकल्प पुरोहितों से व्रतशीलता में बँधना।

विजयादशमी पर्व का संदेश है स्वाध्याय, शस्त्र एवं शक्ति संगठन की आवश्यकता का स्मरण व असत्य पर सत्य की विजय की प्रसन्नता-प्रफुल्लता को अभिव्यक्त करना। विजयादशमी पर्व वास्तव में जनता में राष्ट्रीय भावना के प्रसार का त्योहार है और वर्तमान समय में इसका महत्त्व अतीतकाल की अपेक्षा कहीं अधिक है।

इसलिए इस समय विजयादशमी का उद्देश्य यही होना चाहिए कि देशवासियों में राष्ट्ररक्षा की भावना भली प्रकार जड़ जमा ले और वे राष्ट्रहित के विरोधी कार्यों से सदैव दूर रहें तथा राष्ट्रविरोधी तत्त्वों का डटकर मुकाबला करें, उनके पैर टिकने न दें। हम आपस में जाति, संप्रदाय में न बँटें। हम राष्ट्रीय एकता, अखंडता और स्वतंत्रता की प्राणपण से रक्षा का व्रत लें।

नवरात्र पर्व वर्ष में दो बार आता है। एक चैत्र शुक्ल 1 से 9 तक। चैत्र नवरात्र का प्रथम दिन नवीन संवत्सर तथा समापन भगवान राम के जन्म दिवस रामनवमी होता है। हमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के जीवन चरित्र से सद्गुणों को धारण करना चाहिए और उद्देश्यपूर्ण जीवन जीना चाहिए। इस दौरान हम गायत्री साधना-उपासना के द्वारा अपने जीवन को पवित्र और उद्देश्यपूर्ण बनाने की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

दूसरे नवरात्र आश्विन शुक्ल 1 से 9 तक पड़ते हैं। ऋतुओं के संधिकाल इन्हीं पर्वों पर पड़ते हैं। संधिकाल को उपासना की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। ऋतु संधिकाल के 9-9 दिन दोनों नवरात्रों में विशिष्ट रूप से साधना-अनुष्ठानों के लिए महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी पर्व-त्योहार सामाजिक संस्कार अर्थात सामूहिक लोक-शिक्षण और उत्साह-उल्लास के अभिवर्द्धन हेतु भारत के महान ऋषियों के द्वारा विकसित किए गए हैं।

हिंदू धर्म में पर्व और धार्मिक त्योहारों का इतना बाहुल्य है कि उनके लिए जनता में 'सात वार और नौ त्योहार' की कहावत प्रचलित हो गई है। हिंदू धर्म में प्रत्येक तिथि और वार को पर्व माना गया है और उसे मानने और मनाने के लिए विशेष धार्मिक विधान भी बतलाया गया है। प्रथम श्रेणी में वे पर्व-त्योहार आते हैं, जो सांस्कृतिक हैं और जिनका उद्देश्य भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों और विचारों के अभिसिंचन से समाज को संस्कारित करना है।

होली, दीपावली, वसंत, श्रावणी, दशहरा आदि पर्व इसी श्रेणी में आते हैं। दूसरी श्रेणी में वे त्योहार आते हैं, जिन्हें किसी महापुरुष अथवा अवतार की स्मृति में बनाया गया है। अवतारों व महापुरुषों के गुणों, लीलाओं, पावन चरित्र, महानताओं को स्मरण रखने के लिए इनका विधान है। इस श्रेणी में रामनवमी, कृष्णाष्टमी, हनुमान जयंती आदि त्योहार आते हैं।

दोनों श्रेणी के पर्व-त्योहारों का मूल उद्देश्य यही है कि लोग सांसारिकता में न डूब जाएँ, उनका जीवन नीरस, चिंताग्रस्त, भारस्वरूप न हो जाए, उन्हें ईश्वर की दिव्य शक्तियों और अतुल सामर्थ्य के विषय में चिंतन, मनन, स्वाध्याय के लिए पर्याप्त अवकाश मिले।

त्योहारों के कारण सांसारिक आधि-व्याधि से त्रस्त लोगों में नए प्रकार की उमंग और जाग्रति उत्पन्न हो जाती है। लोग बहुत दिन पूर्व से ही त्योहार मनाने में उत्साह, आनंद लेने लगते हैं। पर्व-त्योहारों में लौकिक कार्यों के साथ ही धार्मिक तत्त्वों का ऐसा समावेश कर दिया है कि उनसे हमको जीवन-निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है, समाज संस्कारित होता है और समाज सुमार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

ये पर्व-त्योहार किसी भी श्रेणी के क्यों न हों, उनको स्थापित करने में हमारे पूर्वजों का मुख्य उद्देश्य यही था कि जनसाधारण में धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता और परोपकार आदि भावनाएँ बढ़ें तथा लोगों की प्रवृत्ति भौतिकता की तरफ से आध्यात्मिकता की ओर यथाशक्ति अग्रसर हो सके।

भारतीय ऋषि-मुनियों ने लोगों को अधिक-से-अधिक समय धार्मिक कृत्यों, धर्मोत्सवों, धार्मिक विधि-विधानों में लगाने की व्यवस्था की है, जिससे लोगों का सामूहिक परिष्कार हो और परिष्कृत और संस्कारी लोगों से पूरे समाज का संस्कार हो, परिष्कार हो अर्थात सामाजिक संस्कार हो, पर विचारणीय यह भी है कि आज पर्व-त्योहारों के नाम पर कई विकृतियों को भी पर्व-त्योहार का हिस्सा बनाने की मूढ़ परंपरा चल पड़ी है और पर्व-त्योहारों के मूल उद्देश्य को भुला दिया गया है।

उदाहरण के लिए दीवाली के मौके पर जुआ खेलना, होली के अवसर पर शराब पीना, उपद्रव मचाना, भले लोगों को तंग करना, शिवरात्रि के नाम पर नशापान करना आदि चीजें भी शामिल हो गईं हैं, जो पर्व-त्योहारों की मूल आत्मा और मूल उद्देश्य के विपरीत है। हमें पर्व-त्योहारों को उनके मूल उद्देश्य और उनकी वास्तविक आत्मा अर्थात आध्यात्मिकता को ध्यान में रखकर ही मनाना चाहिए। पर्यावरणीय संकट को देखते हुए पर्व-त्योहारों को सही उद्देश्य से मनाना चाहिए। ❑

ततस्तु मूले संघाते वर्तमाने युग क्षये।
यदा चन्द्रस्य सूर्यस्य तथा तस्य बृहस्पतिः॥
एकराशौ समेष्यन्ति प्रयत्स्यति तदा कृतम्।
कालवर्षी च पर्जन्यो नक्षत्राणि शुभानि च॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भविष्येति निरम्ययम्॥

अर्थात जब एक युग समाप्त होकर दूसरा प्रारंभ होने को होता है, तब संसार में संघर्ष और तीव्र हलचल प्रारंभ हो जाती है। जब चंद्र, सूर्य, बृहस्पति तथा पुष्य नक्षत्र एक राशि पर जाएँगे तब सतयुग का आरंभ होगा। इसके बाद शुभ नक्षत्रों की कृपा-वर्षा होगी। पदार्थों की वृद्धि से सुख-समृद्धि बढ़ेगी, लोग स्वस्थ व प्रसन्न रहने लगेंगे।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

चरित्र-निर्माण

चरित्र व्यक्तित्व का सार है, जो व्यक्ति के विचार, व्यवहार एवं संस्कारों के माध्यम से व्यक्त होता है। चरित्र ही एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न करता है एवं उसकी मौलिक पहचान को परिलक्षित करता है। चरित्र के आधार पर ही व्यक्ति के भविष्य व नियति को परिभाषित किया जा सकता है।

चरित्र-निर्माण को महत्त्व देते हुए जीवन को मनोवांछित दिशा दी जा सकती है। वस्तुत: चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया ही व्यक्तित्व को गरिमापूर्ण बनाती है और जीवन के दूरगामी सुखद परिणामों को सुनिश्चित करती है।

व्यक्ति अपने पुरुषार्थ, परिस्थितियों एवं भाग्य के संयोग के आधार पर सफलता के शीर्ष तक पहुँच सकता है, लेकिन वहाँ टिके रहना चरित्रबल के आधार पर ही संभव होता है। चरित्र के अभाव में व्यक्ति को सफलता एवं बुलंदियों के शिखर से लुढ़कते देर नहीं लगती। ऐसे ही टिकाऊ संबंधों का आधार भी चरित्रनिष्ठा ही है।

चरित्रनिष्ठा के आधार पर व्यक्ति का संयमित एवं सदाचारयुक्त आचरण परस्पर विश्वास को सुदृढ़ करता है, जो परिवार में सुख-शांति एवं सद्भावपूर्ण वातावरण का सृजन करता है; जबकि चारित्रिक दुर्बलता आते ही विश्वास की नींव हिल जाती है और कलह-क्लेश से लेकर अन्य अवांछनीय घटनाएँ घटने लगती हैं।

चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया के अंतर्गत ही व्यक्ति में उस नैतिक बल, मनोबल का विकास होता है, जो जीवन की प्रतिकूलताओं एवं विषम प्रवाह का सामना धैर्य एवं जीवट के साथ कर सके; क्योंकि चरित्र-निर्माण से उत्पन्न बल व्यक्ति को अविचल आस्था एवं धैर्य के साथ अपने पथ पर टिकाए रखता है और जीवन के पावन ध्येय के साथ जोड़े रखता है।

चरित्र-निर्माण की फलश्रुति व्यक्तित्व में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता के रूप में फलीभूत होती है, जो सामाजिक जीवन में सफलता का ठोस आधार बनती है।

चरित्र के आधार पर ही व्यक्ति लोक-सम्मान अर्जित करता हुआ प्रतिष्ठित होता है। चरित्र-निर्माण के साथ ही व्यक्ति का आध्यात्मिक कक्षा में प्रवेश संभव होता है और व्यक्ति अपने चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार का परिष्कार करते हुए दैवी अनुग्रह का अधिकारी बनता है।

राष्ट्र के निर्माण के लिए हम सब नागरिक कर्मशील और जागरूक हों। आलसी और प्रमादी व्यक्ति जिस देश में होते हैं, वह देश गुलाम हो जाता है। *—अथर्ववेद*

इस तरह चरित्र-निर्माण जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष का आधार है, लेकिन चरित्र-निर्माण की यह प्रक्रिया एकाएक घटित नहीं होती। यह समयसाध्य क्रमिक प्रक्रिया है, जो ईमानदारी, जिम्मेदारी, संयम, सत्कर्म एवं सच्चिंतन के सतत अभ्यास के साथ घटित होती है।

हजारों ठोकरें खाते हुए चरित्र का गठन होता है। सजग दृष्टि, नैष्ठिक प्रयास एवं अखंड तत्परता के साथ इस महान कार्य में संलग्न होना पड़ता है, तब जीवन को धन्य बनाने वाले कालजयी चरित्र का गठन होता है। ❑

गंगा माँ के प्रति संवेदना

गंगा मात्र एक नदी नहीं देव संस्कृति की संवाहक एवं एक दिव्य प्रवाह हैं। गंगा जी भारत की एक बड़ी आबादी की जीवन-रेखा हैं, जिनके किनारे सांस्कृतिक-धार्मिक महत्त्व के कितने ही शहर बसे हुए हैं।

इसके किनारे बसने वाली भारत की बड़ी जनसंख्या के भरण-पोषण एवं आर्थिक प्रगति का भी गंगा नदी एक बड़ा आधार हैं। गंगा के इन उपकारों को देखते हुए हम इसे माँ कहकर पुकारते हैं और गंगा मैया में अपने समस्त पापों को निमज्जित करते हुए शुद्ध, निर्मल एवं पापमुक्त होने का भाव करते हैं।

ये अकारण भी नहीं है। आखिर गंगा जी ही एकमात्र नदी हैं, जो त्रिदेवों से जुड़ी हुई हैं। गंगा जी ब्रह्मा जी के कमंडलु में वास करती हैं, विष्णु जी के चरणों से निस्सृत होती हैं और शिव जी की जटाओं से होती हुई धरती पर अवतरित होती हैं। इनकी दिव्यता को देखते हुए गंगाजल को ब्रह्मद्रव्य की संज्ञा दी गई है। आश्चर्य नहीं कि इनकी एक बूँद मरणासन्न व्यक्ति के मुँह में डालने से उसकी सद्गति सुनिश्चित मानी जाती है और इसके अभिसिंचन से घर-आँगन एवं पूजनस्थल शुद्ध, पावन हो जाते हैं।

गंगाजल में स्नान के साथ जीवन के सकल पाप-तापों से मुक्ति का भाव रहता है, लेकिन गंगा जी के साथ हम जो व्यवहार कर रहे हैं, वह हमारी श्रद्धा, आस्था पर गहन-गंभीर प्रश्नचिह्न खड़े करता है। स्नान के लिए अपने साथ लाए कपड़े, पूजन सामग्री, अवशिष्ट सब कुछ गंगा जी में प्रवाहित कर अपने पाप से मुक्ति की कामना करते हैं और हर वर्ष जब सफाई अभियान चलता है, तो हजारों टन कचरे में ये ही साड़ियाँ, धोतियाँ, चादर, पन्नियाँ, फूलों की मालाएँ, विसर्जित मूर्तियाँ, पूजन-सामग्री सड़ाँध मारती गंदगी के रूप में गंगा जी की गोद में मिलती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हम गंगा जी का कूड़ेदान की तरह उपयोग करते हैं। गंगा माँ के प्रति न्यूनतम संवेदना से हीन ऐसा गैरजिम्मेदार व्यवहार हमारी भक्ति पर गहरे प्रश्नचिह्न खड़े करता है। गंगा जी जैसे दैवी प्रवाह को बदरंग करना, इसे किसी भी रूप में दूषित करना एक अपराध जैसा कृत्य है और ऐसा करने वाला निश्चित रूप से पाप का ही भागीदार माना जाएगा।

अवतारों में उच्चस्तरीय वे ही माने जाते हैं, जिनमें संत-सी पवित्रता, सुधारक-सी प्रखरता के साथ ऋषियों जैसी तत्त्व दृष्टि होती है। वे उत्कृष्टता को समर्पित होते हैं। अहंता के परिपोषण में लगने वाली शक्ति समर्पण में लगने के कारण उनके पास इतनी अधिक मात्रा में बच जाती है, जिसके आधार पर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य कार्य कर दिखाते हैं।

जरूरी है कि हम एक जिम्मेदार नागरिक की भाँति गंगा जी सहित समस्त जलस्रोतों को निर्मल बनाए रखने में अपना योगदान दें। □

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

हम करें राष्ट्र-आराधन

हम राष्ट्रीय जीवन के ऐतिहासिक पलों में जी रहे हैं, जब भारत की सनातन गौरव-गरिमा उफान पर है, वैश्विक परिस्थितियाँ भी उथल-पुथल से भरी हुई हैं और समूचा विश्व भारत की ओर आशा भरी निगाहों से देख रहा है। भारत भी अपनी वैश्विक भूमिका निभाने के लिए तैयार हो रहा है।

कुछ कर गुजरने का जोश हर युवा-हृदय में अँगड़ाइयाँ ले रहा है, लेकिन देश की आंतरिक परिस्थितियाँ भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं हैं, जहाँ अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। भारत को स्पष्ट सोच एवं दृढ़ संकल्प के साथ आगे बढ़ना है, अपना घर ही नहीं सँभालना है, बल्कि पूरे विश्व का भी मार्गदर्शन करना है।

स्मरण रहे कि यह कार्य राजनीतिक, आर्थिक या अन्य भौतिक शक्तियों के आधार पर नहीं होना है, बल्कि अपनी सांस्कृतिक धरोहर, आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि, सार्वभौमिक जीवनमूल्यों को केंद्र में रखकर होना है; क्योंकि भारत की केंद्रीय विशेषता उसकी सांस्कृतिक-आध्यात्मिक विरासत रही है, जिसके कारण इतिहास के विषमतम दौर में भी इसकी कालजयी चेतना की अंतर्धारा राष्ट्रीय जीवन में प्रवाहित रही। यहाँ कवि इकबाल की कविताओं की पँक्तियाँ पठनीय हैं—

यूनान - ओ - मिस्त्र - रोमां,
सब मिट गए जहाँ से।
अब तक मगर है बाकी,
नाम ओ-निशाँ हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती,
मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन,
दौर-ए-जहाँ हमारा॥

वस्तुतः यह हमारी कालजयी सांस्कृतिक विरासत के आधार पर ही संभव हुआ, जहाँ राष्ट्र कोई भौगोलिक या राजनीतिक-आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक इकाई रहा। जहाँ देश माँ के रूप में उपास्य रहा, जिसे अनंत काल से हमने पवित्र मातृभूमि माना और इसकी संतान होने का हमें सदैव गर्व रहा।

राष्ट्र-निर्माण के मंत्रद्रष्टा स्वामी विवेकानंद का सूत्र स्मरणीय है कि प्रत्येक राष्ट्र का एक अपना जीवन व्रत है, जो विभिन्न जाति-समूहों की सुश्रृंखल स्थिति के लिए विशेष आवश्यक है और जब तक वह राष्ट्र उस आदर्श को पकड़े रहेगा, तब तक किसी तरह भी उसका विनाश नहीं हो सकता और भारत का केंद्रीय भाव अध्यात्म रहा है, भारत की आत्मा उसके धर्म से जुड़ी हुई है।

सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्रीयता के उद्घोषक महर्षि अरविंद के शब्दों में राष्ट्र हमारी जन्मभूमि है। यह जमीन का टुकड़ा मात्र नहीं, न ही एक शाब्दिक नाम है, न मन की कपोल-कल्पना है। यह एक विराट शक्ति है, जो लाखोंलाख लोगों की शक्तियों का, जिससे राष्ट्र बनता है, का समुच्चय है।

राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। जब तक देशवासियों में राष्ट्र के प्रति सांस्कृतिक चेतना का यह भाव प्रबल रहा, राष्ट्रीय जीवन भी जीवंत एवं प्रवाहमान रहा, लेकिन जब-जब राष्ट्रीयता का यह भाव क्षीण हुआ, हम आपस में ही लड़ने लगे, तब-तब विदेशी आक्रांताओं को दुर्बलता की इस

दरार में सेंध मारकर प्रवेश करने व अपनी दुरभिसंधियों को सफल करने का अवसर मिला।

परिणामस्वरूप सैकड़ों वर्षों तक भारत विदेशी दासता की बेड़ियों में जकड़ने के लिए विवश-बाध्य हुआ, लेकिन आज भारत पुनः राष्ट्रीय जीवन में सांस्कृतिक एवं बौद्धिक दासता के तमाम प्रतीकों को उखाड़ फेंकने के लिए तत्पर है। अपने अतीत के गौरव के आधार पर वर्तमान को सँवारने और उज्ज्वल भविष्य-निर्माण के स्वर्णिम पथ पर बढ़ने के लिए तैयार है।

भारतमाता अपने सनातन गौरव एवं वैभव के साथ पुनः अपने स्वर्णिम सिंहासन पर प्रतिष्ठित होने की तैयारी में है। यह कपोल-कल्पना भर नहीं है, बल्कि विश्वहित में ईश्वरीय विधान के अंतर्गत घटित होने वाली भवितव्यता है। महर्षि अरविंद के शब्दों में, विश्व को आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करने की जिम्मेदारी सँभालने का दायित्व भारत को सौंपा गया है।

यह क्षमता भारत में सनातन काल से रही है। अब भौतिक ज्ञान-विज्ञान ने पर्याप्त उन्नति कर ली है। उसका लाभ जन-जन को मिले तथा यह शक्ति भटकने न पाए, इसके लिए उसे समयानुकूल आध्यात्मिक अनुशासन में बाँधना पड़ेगा। ऐसे महत्त्वपूर्ण समय में भारत की आध्यात्मिक चेतना को फिर से उभरकर आगे आना है। विश्व को समयानुकूल आध्यात्मिक, सांस्कृतिक दिशा देने की जिम्मेदारी भारत को सँभालनी पड़ेगी।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में—इन दिनों विश्व मनीषा विश्व-कल्याण के जिन सूत्रों को अधीर होकर खोज रही है, वे सूत्र हमारे पास विरासत में सुरक्षित हैं। समयानुकूल सांस्कृतिक सूत्रों के अभाव में ज्ञान-विज्ञान की तमाम शक्तियों से संपन्न मनुष्य भटककर कलह और विनाश के रास्ते पर चलता रहे और हम चुप रहें तो भी हम दंड के भागीदार बनेंगे।

यह युग की माँग है कि भारत के प्राणवान लोग अपनी सांस्कृतिक विरासत का समुचित लाभ विश्व को देने के लिए तनकर खड़े हों। इस महान प्रयोजन का हिस्सा बनने के लिए सर्वप्रथम राष्ट्र-गौरव के आधारभूत तत्त्व से परिचित होने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय गौरव के आधारभूत तत्त्वों में सर्वोपरि है—हमारी राष्ट्रीय संस्कृति।

प्रज्ञावतार की दिव्य सत्ता ही प्रमुख है और इन दिनों वही युग-परिवर्तन के सरंजाम जुटा रही है तो भी समग्र कर्तृत्व का वहन उसे अकेले नहीं करना है।

सेनापति अकेला नहीं लड़ता, सैनिक भी साथ चलते हैं। हाथ अकेला पुरुषार्थ नहीं करता, दस उँगलियाँ व चौबीस पोर भी अपनी क्षमता के अनुरूप अपने ढंग से उस कर्म-कौशल में जुड़े रहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

यह हमारे राष्ट्रीय गौरव का सनातन तत्त्व है। समूचे विश्व में भारतवासी ही हैं, जो अपना सिर गर्व से उठाकर कह सकते हैं कि विश्व की प्रथम संस्कृति हमारे यहाँ जन्मी और पनपी। हमने सर्वप्रथम समूची विश्व-वसुधा को ज्ञान का आलोक दिया।

विश्व संस्कृति की आधारभूमि तैयार की। स्मरण रहे कि भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार आध्यात्मिकता है, परंतु उसमें लौकिक उन्नति की उपेक्षा या अवहेलना नहीं की गई है।

हमारे राष्ट्रीय गौरव का द्वितीय मौलिक तत्त्व है, हमारे राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान की प्राचीन धरोहर। ऋग्वेद के रूप में विश्व के प्रथम ग्रंथ-निर्माण का श्रेय हमारे अपने देश को प्राप्त है। हमने न केवल ज्ञान की उज्ज्वल परंपरा का विकास किया, अपितु विज्ञान के आश्चर्यजनक सत्यों की खोज भी की। हमारे आर्ष वाङ्मय में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान की तमाम धाराएँ आज भी अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं।

हमारे राष्ट्रीय गौरव का एक और सनातन तत्त्व है—हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल्य, जो हमारे चिंतन, चरित्र एवं व्यवहार को उत्कृष्ट एवं उज्ज्वल बनाते हैं। इनका समन्वित स्वरूप ही जीवन जीने की कला है; जिसे अपनाकर मानव महामानव बनता है और मानवीय जीवन की सकल संभावनाओं के साकार होने का द्वार खुलता है। राष्ट्रीय गौरव के इस क्रम में राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रतीकों का कम महत्त्व नहीं है; क्योंकि इनसे उस पुरातन युग की सनातनता का बोध होता है।

उन्हीं के माध्यम से हम अपने राष्ट्रीय गौरव को अपनी आँखों से देख पाते हैं। राष्ट्रीय गौरव के आधारभूत तत्त्वों में सर्वाधिक जीवंत तत्त्व है—हमारी राष्ट्रीय विभूतियाँ एवं आदर्श। इन विभूतियों से संपन्न व्यक्तित्व हमें इस सत्य का बोध कराते हैं कि हमारी संस्कृति एवं हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल्यों को अपनाने वाला कुछ ऐसा ही महान एवं गरिमामय जीवन जी सकता है, जैसा कि ये विभूतिवान लोग जिए।

इनका अनुसरण कर हम भी वैसा ही ऊर्जावान जीवन जी सकते हैं, फिर से वैसी ही अनुकरणीय परंपरा को जन्म दे सकते हैं। किसी भी राष्ट्र की वास्तविक उन्नति उसके चरित्रवान देशवासियों पर निर्भर करती है। चरित्र की सुदृढ़ आधारभूमि पर ही राष्ट्र उन्नति का भव्य महल खड़ा होता है। यदि चरित्र ही दोषपूर्ण है, तो किसी ठोस उन्नति की आशा करना व्यर्थ है।

नागरिकों की ईमानदारी, मन-वचन-कर्म की एकता, जिम्मेदारी का भाव, समझदारी और व्यापक जनहित में अपने स्वार्थ के त्याग एवं आत्म-बलिदान का भाव, ऐसे सद्‌गुण हैं, जिनके आधार पर टिकाऊ सामाजिक प्रगति एवं राष्ट्रीय उत्थान की आशा की जा सकती है। वस्तुतः चरित्रनिष्ठ व्यक्ति ही किसी राष्ट्र की वास्तविक संपदा होते हैं। अतः चरित्र-निर्माण पर अधिक-से-अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

इसे व्यक्ति को मापने की पहली कसौटी माना जाए। समाज में चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों की संख्या में जितनी वृद्धि होने लगेगी, उतना ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण भी होता जाएगा। चरित्र-निर्माण के अभाव में राष्ट्र-आराधना का कार्य जड़ों को सींचने के बजाय मात्र पत्तियों एवं टहनियों को सींचने की चिह्नपूजा तक सीमित कर्मकांड माना जाएगा, जिससे किसी महान एवं उल्लेखनीय परिणाम की आशा नहीं की जा सकती।

सृजनात्मक संकल्पों के साथ हर समझदार नागरिक राष्ट्र-साधना के महायज्ञ में अपना योगदान दे सकता है। इसलिए आइए निम्न सृजनात्मक संकल्पों के साथ करें राष्ट्र-आराधन—

हम चरित्र-निर्माण के प्रति सजग रहेंगे और स्वाध्याय करते हुए शिक्षाओं को जीवन में धारण करने का ईमानदार प्रयास करेंगे। जीवन में गायत्री और यज्ञ के तत्त्वदर्शन को धारण करते हुए एक श्रेष्ठ जीवन जिएँगे।

हम परिवार में संस्कारयुक्त वातावरण बनाएँगे एवं नई पीढ़ी को श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए प्रेरित करेंगे। शिक्षा, साधना, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, पर्यावरण-संरक्षण, महिला सशक्तीकरण, दुर्व्यसन मुक्ति, कुरीति-उन्मूलन जैसे रचनात्मक आंदोलनों में क्षमतानुसार अपनी प्रतिभा, योग्यता का नियोजन करेंगे।

देव संस्कृति एवं अध्यात्म-क्षेत्र की श्रेष्ठतम विभूतियों एवं आदर्शों का अनुसरण करेंगे और एक गरिमामयी एवं आदर्श जीवन जिएँगे। अपने नागरिक कर्त्तव्यों का पूरी ईमानदारी एवं जिम्मेदारी के साथ पालन करेंगे और समाज-निर्माण के महान कार्य में अपना योगदान देंगे।

इन संकल्पों का अपनी क्षमतानुसार पालन करते हुए हम **वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः** की भूमिका में भारतमाता की सच्ची सेवा करते हुए राष्ट्र-आराधना के महापर्व में अपना सार्थक योगदान दे रहे होंगे। □

आवश्यक सूचना

1. **कोई भी संदेश (फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप) व्यक्तिगत न भेजें, न कोई धनराशि व्यक्तिगत भेजें। व्यक्तिगत संदेश एवं भेजी गई धनराशि पर कार्रवाई करना संभव न होगा। केवल संस्थागत फोन, ई-मेल, व्हाट्सएप पर ही संदेश एवं राशि भेजें।**
2. **सभी पत्र व्यवहार, ई-मेल, व्हाट्सएप संदेश में अपना पूरा नाम, पता, पिनकोड, मेल आई.डी., मोबाइल नंबर, व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें, ताकि त्वरित कार्रवाई की जा सके।**
3. **अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि पर्याप्त दूरी पर हैं। अतः संदेश अलग-अलग पतों पर ही भेजें। संयुक्त संदेश, धनराशि भेजने से कार्रवाई में विलंब होता है।**
4. **राशि भेजने के पश्चात जमापर्ची के साथ पूरा संदेश भेजें, ताकि समायोजन हो सके।**
5. **अब रजिस्टर्ड सेवा डाक विभाग द्वारा बंद कर दी गई है। जब भी अखण्ड ज्योति न पहुँचे, तुरंत सूचित करें। दोबारा भिजवाने की व्यवस्था की जाएगी।**

***पता—अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा (उ.प्र.),* 281 003**
फोन—(0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449, मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039, व्हाट्सएप नं. 9927086290,
Email-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	**Akhand Jyoti Sansthan**	**I.F.S. Code**	**Account No.**
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प -6

समाजनिष्ठ बनाने का सूत्र

परमपूज्य गुरुदेव के इस युग निर्माण सत्संकल्प में नवसृजन के बीजमंत्रों का प्राकट्य है। जीवन-निर्माण की प्रत्येक संभावना को साकार बनाते हुए मानवता के सार्वभौमिक उत्थान की रीति-नीति इन मंत्रों में अत्यंत सूक्ष्मता से विद्यमान है।

हरेक सत्संकल्परूपी सूत्र व्यक्ति में अंतर्निहित शक्ति-सामर्थ्य और क्षमता का अनावरण कर परत-दर-परत जीवन को व्यापक व समग्र बनाने का निर्देशन करते हैं।

इसके प्रारंभिक सोपानों में मनुष्य जीवन के अंत:-बाह्य पक्षों के पोषण, विकास और संवर्द्धन की प्रेरणाएँ हैं। एक समुन्नत एवं सुदृढ़ जीवन की आधारशिला तैयार करने का संदेश पूज्य गुरुदेव ने प्रथम चार सूत्रों में कह दिया है।

पाँचवाँ सूत्र अपने जीवन के दायरे से बाहर अन्यों व समाज के प्रति व्यक्ति के मनोभाव कैसे हों? इसका आदर्श प्रस्तुत करता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्र-निर्माण से होकर ही नवनिर्माण की अगली यात्रा परिवार, समाज और राष्ट्र व विश्वनिर्माण की ओर बढ़ती है।

व्यक्ति के जीवन का सार्वजनिक एवं सामूहिक जीवन में समन्वय एवं सहयोग कैसे संभव है? इस बात का समाधान लेकर सत्संकल्प का षष्ठ सूत्र प्रस्तुत होता है। यह निर्देशित करता है कि मनुष्य जीवन की गरिमा के अनुरूप व्यक्ति के व्यावहारिक, सामाजिक व सामूहिक जीवन के आदर्श मानदंड क्या, क्यों और कैसे होने चाहिए।

पूज्य गुरुदेव की आप्तवाणी में प्रस्तुत सत्संकल्प का यह षष्ठ सूत्र है—**'मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।'** ध्यान रहे कि प्रत्येक व्यक्ति—समाज एवं राष्ट्र का अभिन्न अंग है। यह भी कि प्रत्येक समाज की एक जीवनशैली, जीवनमूल्य, मर्यादाएँ और आदर्श होते हैं।

इन्हीं की विविधतापूर्ण अभिव्यक्ति से धर्म, संस्कृति, सभ्यता और विरासत में प्राप्त गौरवशाली परंपराओं का पोषण होता है। सभी का जीवन इन्हीं की छत्रछाया में चलता है और व्यक्ति शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, शिल्प, कृषि, रोजगार जैसे अध्यवसायों में प्रवृत्त हो पाता है और धर्म, संस्कृति, समाज एवं राष्ट्र के स्तर पर भी ऐसे सामूहिक जनमानस का निर्माण होता है, जो परिवर्तनकारी शक्तियों को उत्पन्न कर बड़ी-बड़ी क्रांतियों को जन्म देते हैं।

अत: स्पष्ट है कि संस्कृति, समाज और राष्ट्र से प्रत्येक व्यक्ति का सीधा संबंध है। समाज एवं राष्ट्र की सुख-शांति, स्थिरता और उन्नति का आधार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से जुड़ा है। व्यक्ति के जीवन की सजगता, कर्त्तव्यनिष्ठा और सदाचरण से ही इनकी समुन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। कर्त्तव्यबोध और आचरणनिष्ठा नहीं होने से ही सामूहिक जीवन में विसंगतियाँ, विडंबनाएँ व कुरूपता आने लगते हैं।

वर्तमान का परिदृश्य ऐसी ही विसंगतियों से ग्रस्त दिखाई पड़ता है। सामाजिक वातावरण में

आधुनिकता और भोगवाद की प्रवृत्तियों ने समाज की मूल्यनिष्ठ परंपराओं, आदर्शों को दरकिनार कर दिया है।

समाज में सौहार्द, अपनत्व, सहयोग, सेवा जैसे मूल्य औपचारिकताओं की भेंट चढ़ चुके हैं। बाहरी दुनिया की चमक-चकाचौंध, दिखावा-अंधानुकरण और जीवन के उथलेपन ने सार्वजनिक जीवन के लिए ऋषियों द्वारा बनाई दिव्य परंपराओं-मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है। सामाजिक मर्यादाओं, अनुशासनों, रीतियों और उनसे जुड़े आदर्शों-मूल्यों की परवाह करने वाली पीढ़ी अब समाप्त होते दिख रही है।

युगद्रष्टा पूज्य गुरुदेव ने व्यक्ति के सामूहिक एवं राष्ट्रीय जीवन में उत्पन्न ऐसी ही विसंगतियों-समस्याओं का समाधान सत्संकल्प के षष्ठ सोपान में दरसाया है। इस सत्य को उन्होंने भली भाँति अनुभव किया कि व्यक्ति के मनोभावों, आचरण, व्यवहार में ऋषियों की आदर्श परंपराओं तथा सहज मानवीय मूल्यों को सँभाले रखने की क्षमता न्यून होती दिखाई देती है। व्यक्ति अपनी ही समस्याओं, संकीर्णताओं, स्वार्थों में उलझा नजर आता है।

ऐसे में यदि उसके व्यापक जीवन की उक्त श्रेष्ठ परंपराओं को पुनर्प्रतिष्ठित नहीं किया गया तो निकट भविष्य में संस्कृति, समाज और राष्ट्र की आदर्श परिकल्पनाओं व गौरवशाली विरासत को धराशायी होते देर नहीं लगने वाली। आधुनिकता व भोगवाद की आँधी तथा स्वार्थ, वर्चस्व और अहं का तांडव संपूर्ण विश्व समाज को बेहाल किए हुए है। तब ऐसी स्थिति में सामाजिक संवेदनाओं के तंतुओं को जोड़ने-सँभालने की चिंता भला किसे होगी, परंतु इस तथ्य का दूसरा पहलू भी है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इक्कीसवीं सदी को नवनिर्माण की, नए युग की सदी कहा है। उनकी संकल्पना में मानव जीवन से जुड़ी ऐसी किन्हीं भी विसंगतियों का कहीं कोई स्थान नहीं है। उनकी मान्यता में व्यक्ति और समाज का आंतरिक ताना-बाना अर्थात आधार सुदृढ़ हो तो कोई भी आँधी-तूफान कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

इसी आधार को मजबूती प्रदान करने-पुनर्सृजित करने की प्रेरणा, संकल्प एवं दिशा-निर्देश सत्संकल्प के इस षष्ठ सूत्र में हैं। इस सूत्र का पहला आयाम है मर्यादाओं का पालन करने की प्रतिबद्धता। जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर मर्यादाएँ निर्धारित हैं।

संसार में मनुष्य जीवन के जितने रूप-आयाम दिखाई पड़ते हैं, सभी स्तर पर अनुशासन, मर्यादाएँ एवं कर्त्तव्य की डोर से प्रत्येक व्यक्ति बँधा हुआ है। इनके अतिक्रमण से ही संकट, समस्याएँ और विसंगतियाँ पनप उठती हैं।

सोने की चार तरह से परीक्षा की जाती है—काटकर, तपाकर, घिसकर और पीसकर। आदमी की भी चार तरह से परीक्षा होती है—त्याग से, शील से, गुण से और कर्म से। —*परमपूज्य गुरुदेव*

सर्वत्र व्याप्त इन जीवन की मर्यादाओं को पालन करने की अपेक्षा सभी से की जाती है, ताकि जीवन में चहुँओर सुख, शांति, समृद्धि का वातावरण बना रहे। ये मर्यादाएँ कहीं धर्म के रूप में, कहीं कर्त्तव्य-उत्तरदायित्व के रूप में तो कहीं विरासत-परंपरा तथा आदर्शों-मूल्यों के रूप में मौजूद हैं। ये सब मिलकर ही समाज एवं राष्ट्र में जीवन को विविधतापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान कर कल्याणकारी दिशा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाते हैं।

समाज की सांस्कृतिक पहचान—गौरव और राष्ट्र की अस्मिता एवं सम्मान को ये मर्यादाएँ ही सँभाले रखती हैं। इसलिए सभी मनुष्यों के लिए जीवन में अनुशासन, नैतिकता और संस्कारों के रूप में निर्दिष्ट मर्यादाओं को बनाए रखना अनिवार्य समझा गया है।

व्यक्तिगत जीवन में भी ये मर्यादाएँ शरीर, मन, भाव से लेकर आचरण, व्यवहार, शिष्टाचार, आत्मसम्मान, आत्मानुशासन जैसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं को संतुलित, समुन्नत बनाए रखती हैं। जीवन की आचार संहिता के रूप में ये मर्यादाएँ ही व्यक्ति को जीवन की हर विषम परिस्थितियों में कर्त्तव्य, नैतिकता और धर्म-मर्यादा के मार्ग पर अडिग बनाए रखती हैं।

आंतरिक जीवन में इच्छा, काम, क्रोध, आवेग हों अथवा पारिवारिक जीवन में पुत्र, पिता, पति, भाई आदि की भूमिका हो या सार्वजनिक जीवन में सत्य, न्याय, ईमानदारी और सहकारिता के मानदंड—सभी स्तर पर मर्यादाओं के पालन से ही व्यक्ति अपने जीवन की गरिमा एवं सार्थकता को बनाए रखता है। मर्यादाओं के पालन करने की महत्ता और आवश्यकता सर्वत्र है।

व्यक्तिगत जीवन की सुख, समृद्धि एवं विकास से लेकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र-निर्माण में मर्यादाओं को पालन करने की अनिवार्यता स्पष्ट है। इन मर्यादाओं को धारण करने और जीवनपर्यंत अपनाए रखने का संदेश हमारे शास्त्रों, आप्तपुरुषों और जीवन के रीति-नीति निर्धारक महापुरुषों ने भी दिया है।

झूठ न बोलना, चोरी न करना, हिंसा न करना, अन्यों को कष्ट न देना, बड़ों का आदर, छोटों को स्नेह, कर्त्तव्य का पालन, वाणी पर अडिग बने रहना, श्रेष्ठों का आज्ञापालन, सदाचार-शिष्टाचार जैसी अनेकानेक मर्यादाओं को मनुष्य जीवन की गरिमा और श्रेष्ठता के रूप में निर्दिष्ट किया गया है।

वर्तमान समय में मनुष्य जीवन की ये मर्यादाएँ जीवन के व्यावहारिक धरातल पर अत्यंत कमजोर होने लगी हैं। व्यक्ति के जीवन में इनके पालन करने की अनिवार्यता का सरोकार कहीं दिखाई नहीं देता। इसलिए पूज्य गुरुदेव ने अपने इस सूत्र के प्रथम सोपान में मनुष्य जीवन की मर्यादाओं का पालन करने का संकल्प दोहराया है। समाज एवं राष्ट्र के नवनिर्माण की पृष्ठभूमि—मर्यादाओं के पालन से ही विनिर्मित होती है।

सूत्र का दूसरा आयाम वर्जनाओं से बचने का है। सार्वजनिक जीवन में प्रत्येक व्यक्ति का यह उत्तरदायित्व है कि वह जिस देश, काल, परिस्थितियों में है, वहाँ मौजूद वर्जित एवं निषिद्ध बातों के प्रति सजग रहे एवं विवेकपूर्ण आचरण करे।

प्रत्येक राष्ट्र, समाज एवं समुदाय में धर्म, संस्कृति एवं सामाजिक रीति-रिवाजों, परंपराओं के रूप में कुछ बातों की वर्जनाएँ मौजूद रहती हैं। उनके प्रति सम्मान एवं संवेदनशीलता का अपनाया जाना आवश्यक है। पूज्यवर का यह सूत्र-संकल्प उसी के प्रति सजग होने का आह्वान करता है।

समाज में व्याप्त वर्जनाओं एवं अंधविश्वासों से शायद ही कोई अछूता हो। ऐसे में तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण दृष्टि के आधार पर आत्मसंरक्षण और सौहार्दता को बनाए रखना आवश्यक है। समय के साथ-साथ अनेकों वर्जनाओं का समाधान व अंधविश्वासों का निराकरण भी आवश्यक है, ताकि सभ्य, संस्कारी और सुसंस्कृत समाज का नवनिर्माण किया जा सके। अतः इस दिशा में सजग एवं जिम्मेदार बने बिना वर्जनाओं से बचना मुश्किल है।

पिछली सदी में समाज अनेक धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों और रीति-रिवाजों में जकड़ा रहा, परंतु समय के साथ वैज्ञानिक, तार्किक और समझदारीपूर्ण रवैये ने इस जकड़न को तोड़ते हुए समाज को बहुत हद तक उबारने का कार्य किया है।

इस दिशा में भी निरंतर आगे गतिशील बने रहना आवश्यक है तथा वर्जनाओं का दूसरा पहलू ऐसी मान्यताएँ, रीतियाँ या परंपराएँ हैं, जिनसे समाज व संस्कृति विशेष की पहचान एवं मूल्य जुड़े हैं— उनका सम्मान एवं गौरव बनाए रखना भी आवश्यक है। दोनों ही रूपों में वर्जनाओं से बचे रहने की प्रेरणा इस सूत्र में समाहित है।

षष्ठ सूत्र का अगला महत्त्वपूर्ण अध्याय है— नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करना। एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं गौरवशाली राष्ट्र के नागरिक का कर्त्तव्य भी राष्ट्र की गरिमा एवं सम्मान के अनुरूप होना चाहिए। स्वयं का जीवन राष्ट्र की धरोहर, सम्मान, सुरक्षा और समृद्धि का द्योतक समझे जाने की प्रवृत्ति का होना आवश्यक है। राष्ट्र की एकता, अखंडता, संप्रभुता और शांति-खुशहाली को बनाए रखना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। हमारे संविधान में तो मौलिक कर्त्तव्यों के साथ में इनका पालन करना अनिवार्य कहा गया है।

इन नागरिक कर्त्तव्यों के अंतर्गत राष्ट्र के प्रतीक चिह्न, ध्वज, गान, सार्वजनिक संपत्ति, सुरक्षा, विरासत, संपदा, प्रकृति-पर्यावरण, ज्ञान, कला-कौशल आदि अनेक चीजों के प्रति प्रत्येक नागरिक के कर्त्तव्य निर्दिष्ट हैं। यह केवल कानून का सम्मान ही नहीं, अपितु एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं जिम्मेदार नागरिक के रूप में राष्ट्र के विकास एवं उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान भी है। मातृभूमि की सेवा की भावना और उसकी अभिव्यक्ति का सर्वसुलभ मार्ग नागरिक कर्त्तव्यों का पालन ही है।

सत्संकल्प के इस सूत्र का अंतिम चतुर्थ आयाम है—समाजनिष्ठ बने रहेंगे। समाज का अलग से अपना कोई आधार नहीं होता। वह व्यक्ति, परिवार और समुदायों की सम्मिलित संरचना से ही आकार प्राप्त करता है। यही सभी के पारस्परिक सामूहिक जीवन एवं आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है।

समाज व्यक्ति के ही कर्म, आचरण, व्यवहार का व्यापक फलक है, अतः यदि व्यक्ति में समाजनिष्ठा न हो तो सामाजिक परंपराओं, मूल्यों, आदर्शों को जीवंत बनाए रखना असंभव है। पूज्यवर का यह सूत्र प्रत्येक व्यक्ति से समाजनिष्ठ बनने का आग्रह करता है, ताकि मनुष्य के सामाजिक मूल्यों, आदर्शों एवं दिव्य परंपराओं को संरक्षित एवं विकसित बनाया जा सके।

समाजनिष्ठ का तात्पर्य है कि सभी अपने समाज के प्रति समर्पित, निष्ठावान और हितकारी सोच के साथ समाजसेवा के लिए तत्पर रहें। व्यक्तिगत जीवन की सीमाओं से ऊपर उठकर सामाजिक कल्याण और प्रगति की दिशा में अपने श्रम, समय व साधन को समर्पित करें।

समाज की स्वस्थ परंपराओं से सभी का जीवन सुलभ, सुरक्षित और संवर्द्धित होता है। इनको जीवंत बनाए रखने तथा समयानुसार नई परंपराओं का निर्माण करने की जिम्मेदारी समाज के प्रत्येक व्यक्ति की है।

अपने समय, धन, प्रतिभा का योगदान कर समाज-निर्माण के कार्य को सहज गतिशील बनाया जा सकता है। पूज्य गुरुदेव ने भी समाज, राष्ट्र और विश्व मानवता के नवनिर्माण हेतु अंशदान, समयदान और योग्यता प्रतिभा के रूप में प्रत्येक की भागीदारी का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस मार्ग पर चलने वालों की संख्या भी करोड़ों में है, परंतु देश और समाज का फलक अत्यंत व्यापक है, अतः प्रत्येक के लिए समाजनिष्ठ बनकर इस नवनिर्माण में सहभागी बनने की आवश्यकता है। समाज की समुन्नति से राष्ट्र की समृद्धि, गौरव और प्रगति भी जुड़े हैं।

समाज सभी का है। सब मिलकर यदि थोड़ा-थोड़ा भी सुधार का प्रयास करें तो सभ्य एवं आदर्श समाज की संकल्पना को साकार होते देर नहीं लगेगी। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

परामनोविज्ञान पर शोध

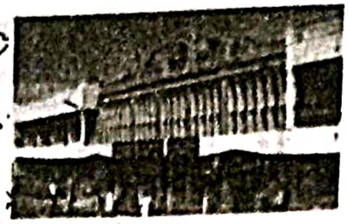

मनुष्य जीवन के व्यक्तित्व संबंधी पहलुओं को लेकर आधुनिक मनोविज्ञान में अनेकों नए शोध-अन्वेषण के क्षेत्र विकसित हो रहे हैं। मानवीय व्यवहार, व्यक्तित्व प्रतिक्रिया, मन और मानसिक संरचना के सूक्ष्म आयामों को वैज्ञानिक रीति से समझने के प्रयास सर्वथा नए नहीं हैं।

नैदानिक मनोविज्ञान, तंत्रिका मनोविज्ञान, विकासवादी मनोविज्ञान, सकारात्मक मनोविज्ञान जैसी कई शाखाएँ इस दिशा में गंभीरता से प्रवृत्त दिखाई देती हैं, परंतु परामनोविज्ञान और अध्यात्म-मनोविज्ञान की दिशा में वैज्ञानिक अध्ययन एवं शोध के प्रयास अभी न्यून ही हैं।

मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं के निर्माण की दृष्टि से मानव चेतना का यह पक्ष, जिसका संबंध परामनोविज्ञान और अध्यात्म विज्ञान से है, अनुत्तरित ही समझा जा सकता है।

उल्लेखनीय है कि परामनोविज्ञान के सैद्धांतिक आधारों की स्पष्टता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन की दिशा को लक्ष्य करके देव संस्कृति विश्वविद्यालय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया।

यह शोध अध्ययन वर्ष—2022 में शोधार्थी ज्वलंत भावसार द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति जी के विशेष संरक्षण तथा प्रतिकुलपति जी के निर्देशन में संपन्न किया गया है।

इस शोध का शीर्षक है—**'पैरासाइकोलॉजी इन दि लिट्रेचर ऑफ पं. श्रीराम शर्मा।'** सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक रीति से संपन्न इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल पाँच अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

शोध का प्रथम अध्याय विषय का परिचय देता है। इसके अंतर्गत परामनोविज्ञान का परिचय, इतिहास एवं पूज्य गुरुदेव के विचारों की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही अध्ययन की आवश्यकता, महत्त्व, उद्देश्य तथा शोध हेतु किए गए साहित्यिक सर्वेक्षण को प्रस्तुत किया गया है।

मानवीय मन को समझने व इसके सूक्ष्म पहलुओं को लेकर अध्ययन के प्रति रुचि तो सदियों से देखी जा सकती है, परंतु ज्ञान-विज्ञान की आधुनिक विधाओं में मनोविज्ञान के क्षेत्र में अठारहवीं सदी के साथ जिन अवधारणाओं, सिद्धांतों को लेकर यह विद्या आगे बढ़ी है, उन्हीं में से एक विशिष्ट पहलू परामनोविज्ञान का भी है।

परामनोविज्ञान के क्षेत्र को व्यवस्थित रूप से विकसित करने का आरंभ 'दि सोसाइटी फॉर साइकिकल रिसर्च' की स्थापना के साथ माना जाता है। सन् 1882 में लंदन में स्थापित इस शोध संगठन का उद्देश्य मनुष्य जीवन की मानसिक व असाधारण, अलौकिक घटनाओं के दावों की जाँच करना था।

बीसवीं सदी में परामनोविज्ञान की अवधारणा व इस क्षेत्र में वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारंभ हुआ। टेलीपैथी, प्रेत-दर्शन, दिव्यदृष्टि, भविष्य-सूचक, सपने, मृतकों से संपर्क, अतींद्रिय संचार, अलौकिक संवेदनाओं आदि से संबंधित अध्ययन को परामनोविज्ञान का क्षेत्र कहा जाता है। भारत में प्राचीनकाल से यह क्षेत्र अध्यात्म जगत् के अंतर्गत सिद्धियों, योग विभूतियों व अलौकिक क्षमताओं के रूप में मौजूद दिखाई देता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

साथ ही वेद-शास्त्रों से लेकर योग, आयुर्वेद आदि ग्रंथों में मन, मन की प्रणालियों और विकारों व समाधान की विधियों-उपायों पर व्यापक चिंतन प्राप्त होता है।

ऐसे में भारत का आध्यात्मिक धरातल पर उत्पन्न मनुष्य के अतींद्रिय क्षेत्र का यह चिंतन तथा आधुनिक परामनोविज्ञान की अवधारणाओं को बल देने वाले दृष्टिकोण के बीच स्पष्टता को रेखांकित कर समन्वयकारी मार्ग से आगे बढ़ना आवश्यक है।

अध्यात्मवादी चिंतन का आधार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संयोग परामनोविज्ञान के क्षेत्र को व्यापकता और समग्रता की संभावना से भर देता है। यह शोध अध्ययन परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के साहित्य में परामनोविज्ञान के इसी समग्र दृष्टिकोण की पड़ताल करता है।

द्वितीय अध्याय परामनोविज्ञान की अवधारणाओं व घटनाओं से संबंधित है। इसके अंतर्गत परामनोविज्ञान की अद्यतन पृष्ठभूमि, इस क्षेत्र में संभावनाओं, क्षमताओं, अशरीरी जीवन एवं अलौकिक अनुभूतियों की विवेचना की गई है।

परामनोविज्ञान का अध्ययन मनोविज्ञान के साथ-साथ मानव विज्ञान, धर्म, भौतिकी आदि क्षेत्रों से भी संबंधित है। यह ऐसी विधा है, जिसमें अलौकिक शक्तियों, असामान्य अलौकिक घटनाओं और अनुभवों के अस्तित्व के ठोस प्रमाणों की खोज की जाती है।

अलौकिक शक्तियों, क्षमताओं, घटनाओं का उल्लेख तो विश्व की प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं में मिलता है, परंतु आधुनिक विज्ञान के मानदंडों के अनुरूप परामनोविज्ञान के अंतर्गत आने वाले पहलुओं की भी वैज्ञानिक एवं तार्किक व्याख्या करना समय की माँग प्रतीत होती है।

इस दिशा में अग्रणी माने जाने वाले जे. बी. राइन से लेकर अनेक विचारकों ने परामनोविज्ञान के विकास हेतु अनुसंधान क्षेत्र को व्यापक बनाने का समर्थन किया, ताकि शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य वैज्ञानिक विधाओं की भाँति परामनोविज्ञान को भी संगठित व सुविकसित ज्ञान-विधा का स्वरूप दिया जा सके।

ईश्वरप्राप्ति के उद्देश्य से ध्रुव तपस्यारत थे। उनके संकल्प को परखने के लिए देवर्षि नारद प्रकट हुए और ध्रुव से पूछने लगे—''यदि जीवनभर तपस्या करने के बाद भी ईश्वर न मिले तो क्या करोगे?''

ध्रुव ने उत्तर दिया—''देवर्षि! क्या जीवनभर तपस्या कर पाने का आत्मानंद ही पर्याप्त नहीं है? यदि ईश्वर न मिले तो तपस्या की इसी यात्रा को अगले जन्म में भी जारी रखूँगा।''

ध्रुव के इसी संकल्प का परिणाम था कि भगवान को प्रकट होना पड़ा।

इस अध्याय में शोधार्थी ने इस दिशा में हुए कुछ उल्लेखनीय प्रयासों एवं चिंतन की विवेचना करते हुए यह स्पष्ट किया है कि परामनोविज्ञान वस्तुतः मनुष्यों की एक अनसुलझी जिज्ञासा का अध्ययन करता है। यह

जिज्ञासा अलौकिक, चमत्कारिक एवं विचित्र घटनाओं के विषय में है। ऐसी घटनाएँ जिन्हें असाधारण कहा जाता है तथा प्रकृति के सामान्य तथा मान्य मानदंडों-नियमों द्वारा जिन्हें समझाया नहीं जा सकता है।

परामनोविज्ञान के क्षेत्र को तीन प्रमुख भागों में वर्गीकृत कर समझा जा सकता है—

(1) संभावनाएँ

(2) प्रेत-दर्शन

(3) अनुभव

इन तीनों पहलुओं की तथ्यात्मक विवेचना इस अध्याय में प्रस्तुत है।

शोध का तृतीय अध्याय पैरासाइकोलॉजी की स्वदेशी समझ (या मॉडल) से संबंधित है। इसके अंतर्गत भारतभूमि में पैरासाइकोलॉजी का स्वरूप, भारतीय विचारों में असामान्य संवेदी क्षमताएँ, भारत में मृत्यु के निकट के अनुभवों और शरीर से बाहर निकलने के अनुभवों की अवधारणाएँ तथा योग-अध्यात्म के क्षेत्र की सिद्धियों के संदर्भ में विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है।

भारत का इतिहास प्राचीन होने के साथ-साथ विशाल और विविधतापूर्ण भी है। सभ्यता, संस्कृति और समाज के स्तर पर इसमें अलौकिकता से पूर्ण रीति-रिवाजों, मान्यताओं और परंपराओं की प्रचुरता रही है।

धार्मिक कार्य, कर्मफल, पुनर्जन्म की मान्यता, सर्वव्यापी चेतना के रूप में आत्मतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व, आत्मचेतना और उसकी जाग्रति, स्वप्न, निद्रा, तुरीय जैसी अवस्थाओं का उल्लेख व मोक्ष जैसे मानवीय चेतना के उच्चतम लक्ष्य की अवधारणा—ये सभी पहलू भारतीय चिंतन एवं ज्ञान की दृष्टि से परामनोविज्ञान के स्वरूप एवं क्षेत्र को एक व्यापकता का आधार प्रदान करते हैं।

भारतीय परामनोविज्ञान की अवधारणा को समझने के लिए इसकी ज्ञान-परंपराओं के आधारभूत तत्त्व के रूप में मौजूद आध्यात्मिकता को समझना आवश्यक होता है। परमपूज्य गुरुदेव ने अध्यात्म को मानवीय चेतना का उच्चतम विज्ञान कहा है। वैदिक शास्त्रों से लेकर, विविध ज्ञान-विज्ञान की परंपराओं में अध्यात्म तत्त्व की विस्तृत व्याख्या-विवेचना मौजूद है।

जीवन के चेतनात्मक विकास और स्वयं के भीतर आत्मतत्त्व की खोज में प्रवृत्त करने वाली मूल अवधारणाएँ पूर्णतः अध्यात्म पर ही आधृत हैं। इसी पृष्ठभूमि पर भारतीय परामनोविज्ञान का स्वरूप भी उभरकर सामने आता है। मानव चेतना के विकास, मन के स्वरूप, जीवन अस्तित्व के पंचकोश एवं चेतना केंद्र आदि की व्याख्या योग, अध्यात्म के ग्रंथों में एवं साधना-परंपराओं में पर्याप्त मिलती है।

दार्शनिक एवं आयुर्वेद आदि ज्ञान धाराओं में भी मन, आत्मा, बंधन, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के विचार मौजूद हैं। इन सभी स्रोतों में असाधारण, असामान्य कही जा सकने वाली मानवीय चेतना की स्थितियों एवं अनुभूतियों की चर्चा भारतीय परामनोविज्ञान की दृष्टि को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है। योग, तंत्र, साधना आदि के क्षेत्र में तो अलौकिक क्षमताओं, सिद्धियों का उल्लेख ही नहीं, वरन इनकी उपलब्धि, अनुभूति और विधियों को प्रकट करने वाली सुदीर्घ परंपरा स्थापित दिखाई देती है।

अध्ययन का चतुर्थ अध्याय पूज्य गुरुदेव के साहित्य पर प्रकाश डालता है। इसके अंतर्गत पूज्य गुरुदेव का जीवन परिचय, उनके द्वारा लिखित साहित्य तथा उसमें परामनोविज्ञान से संबंधित विचारों की विस्तृत विवेचना की गई है। इसके

साथ ही पूज्य गुरुदेव के मनो-आध्यात्मिक विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है।

पूज्य गुरुदेव (20 सितंबर, 1911—2 जून, 1990) का संपूर्ण जीवन अध्यात्म को समर्पित रहा है। अध्यात्म की नींव पर ही उन्होंने अखिल विश्व गायत्री परिवार की स्थापना की तथा भारतीय सिद्धांतों एवं शास्त्रों के सामयिक संदर्भ को केंद्र में रखकर योग, अध्यात्म, धर्म, संस्कृति आदि विषयों पर तीन हजार से अधिक पुस्तकों का लेखन किया है।

इस व्यापक साहित्य में जिन विषयों, विधाओं और विचारों को उन्होंने सम्मिलित किया है, उन सभी का सार-संक्षेप इस अध्याय में प्रस्तुत है। परामनोविज्ञान की दृष्टि से उनकी लिखित 'गायत्री महाविज्ञान' पुस्तक में भारतीय अवधारणा को विनिर्मित करने वाले महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विवेचन प्राप्त होता है।

इसके साथ-साथ साधना से सिद्धि; प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर; ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है? गायत्री महाविद्या का तत्त्वदर्शन; गायत्री, साधना का गुह्य विवेचन; गायत्री-साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार; गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ; गायत्री-साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि; सावित्री, कुंडलिनी और तंत्र; मरणोत्तर जीवन-एक तथ्य; प्राणशक्ति एक दिव्य विभूति; चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन जैसे सैकड़ों बहुमूल्य ग्रंथ व लेख भारतीय परामनोविज्ञान के स्वरूप पर विस्तृत प्रकाश डालते हैं।

आधुनिक समय में परामनोविज्ञान के समुचित विकास एवं इस क्षेत्र की चुनौतियों के समाधान में पूज्य गुरुदेव के साहित्य में मौजूद परामनोविज्ञान व अध्यात्म पर्याप्त पथ-प्रशस्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं।

अध्ययन का अंतिम अध्याय उपसंहार का है, जिसमें सभी अध्यायों का सार-संक्षेप भली प्रकार प्रस्तुत करते हुए इस शोध के महत्त्व, उपादेयता एवं इस क्षेत्र में भावी संभावनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

यह शोध अध्ययन भारतीय पृष्ठभूमि में परामनोविज्ञान के स्वरूप एवं अवधारणा को स्पष्ट करने के साथ ही वर्तमान में प्रचलित परामनोविज्ञान चिंतन की दिशा एवं प्रयासों को भी एक नई एवं व्यापक शोधदृष्टि व महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। ☐

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

—गीता, 6/19

अर्थात जैसे वायुरहित स्थान में रखा हुआ दीपक बिलकुल भी चलायमान नहीं होता, उसकी लौ एकदम टिकी रहती है, जरा भी हिलती-डुलती नहीं है—वही स्थिति परमेश्वर के ध्यान में लगे योगी के चित्त की होती है।

युगगीता — 314

बुद्धि एवं धृति के तीन भेद

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की उनतीसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के अट्ठाईसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस सूत्र में श्रीभगवान अर्जुन को तामसिक कर्त्ता के लक्षणों से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि जो कर्त्ता अनुशासनहीन, अशिष्ट, हठी, कपटी, आलसी तथा निराश होता है तथा दीर्घसूत्री अर्थात कार्यों को टालने वाला होता है, वह तमोगुणी कर्त्ता कहलाता है। भगवान श्रीकृष्ण यहाँ 'अयुक्त' शब्द का प्रयोग करते हैं, उसका अर्थ होता है मूढ़। तमोगुण का प्रभाव व्यक्ति को मूढ़ता से युक्त कर देता है। क्या उचित है एवं क्या अनुचित है—इस विषय में तामसी कर्त्ता कभी विचार नहीं करता अर्थात किए जाने योग्य एवं न किए जाने योग्य कर्मों के प्रति वह पूर्णतया असावधान रहता है। इसी के साथ वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति 'प्राकृत' अर्थात असभ्य होता है। उसका आचरण शिष्टाचार-सदाचार से रहित होता है और तमोगुण की अधिकता के कारण वह सदा अकड़ में रहता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं अकड़ व जिद में रहने के कारण उसका व्यक्तित्व 'स्तब्ध' व्यक्ति का व्यक्तित्व हो जाता है अर्थात जो तर्क, बुद्धि, सद्ज्ञान—सभी के प्रति अपने कानों को बंद करके बैठा हो यानी जो किसी भी तरह की शिक्षाओं को न मानना चाहता हो। इसके बाद श्रीभगवान ऐसे व्यक्ति को कपटी, कृतघ्न कहकर के पुकारते हैं। सात्त्विक गुणों वाला व्यक्ति सदा उस व्यक्ति का उपकार मानता है, जिसने उसका भला किया हो, परंतु तामसी व्यक्ति उपकार मानना तो दूर अपकार करने की सोचता है? ऐसा व्यक्ति आलसी, विषादी एवं कामों को टालमटोल के भाव से करने वाला होता है। उसके अधम विचार किसी अन्य की तुलना में उसको स्वयं को ज्यादा प्रभावित करते हैं, इसीलिए तामसी कर्त्ता सदा नकारात्मक विचारों से घिरे रहते हैं।]

इसके बाद भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय॥ 29॥

शब्दविग्रह—बुद्धेः, भेदम्, धृतेः, च, एव, गुणतः, त्रिविधम्, शृणु, प्रोच्यमानम्, अशेषेण, पृथक्त्वेन, धनञ्जय।

शब्दार्थ—हे धनंजय! (अब तू) (**धनञ्जय**), बुद्धि का (**बुद्धेः**), और (**च**), धृतिका (**धृतेः**), भी (**एव**), गुणों के अनुसार (**गुणतः**), तीन प्रकार का (**त्रिविधम्**), भेद (**भेदम्**), मेरे द्वारा (**मया**), संपूर्णता से (**अशेषेण**), विभागपूर्वक (**पृथक्त्वेन**), कहा जाने वाला (**प्रोच्यमानम्**), सुन (**शृणु**)।

अर्थात हे अर्जुन! अब मैं प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार तुम्हें विभिन्न प्रकार की बुद्धि एवं धृति के विषय में विस्तार से बता रहा हूँ। बुद्धि सतोगुणी हो तो उसके द्वारा यह जाना जाता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित; क्या करणीय है और क्या

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

अकरणीय है; किससे भयभीत होना चाहिए और किससे नहीं भयभीत होना चाहिए तथा क्या बंधन में डालने वाला है और क्या मोक्ष प्रदान करने वाला है।

भगवान श्रीकृष्ण ने इससे पिछले नौ श्लोकों में कर्म के संघटकों का वर्णन किया एवं ये सूचित किया कि उनमें तीन श्रेणियाँ हैं। अब उसी आधार पर वे कार्य की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले दो कारकों—बुद्धि तथा धृति के विषय में बता रहे हैं। बुद्धि सात्त्विक होने पर विवेक का रूप धारण करती है तथा क्या उचित है और क्या अनुचित, इस भेद को स्पष्ट करती है तो वहीं धृति, सात्त्विक होने पर संकल्प का रूप लेती है।

इसमें सर्वप्रथम भगवान श्रीकृष्ण विवेक के विषय में अर्जुन को समझाते हैं। सही पूछें तो श्रीमद्भगवद्गीता का संदेश अर्जुन को विवेक से युक्त करने के लिए ही प्रदान किया गया था। जब गीता का उपदेश आरंभ हुआ तो उस समय अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ था—वह अपने कर्त्तव्यपालन के संबंध में उलझन में था। इसीलिए भगवान ने सर्वप्रथम उसे सतोगुणी बुद्धि के विषय में बताना उचित समझा; क्योंकि सतोगुणी बुद्धि से ज्ञान का प्रकाश निस्सृत होकर द्वंद्व को दूर करता है और सत्पथ को आलोकित करता है।

इससे पूर्व इसी अध्याय में योगेश्वर कृष्ण ने कर्मसंग्रह के तीन कारण बताए थे—करण, कर्म और कर्त्ता। इनमें से कर्म करने के लिए इंद्रियाँ आदि जो करण हैं, उनके त्रिगुणात्मक भेद नहीं होते; क्योंकि इंद्रियाँ बुद्धि के अनुसार कार्य करती हैं और वे उपकरण मात्र हैं, अतः श्रीभगवान यहाँ बुद्धि के भेदों पर चर्चा करते हैं। बुद्धि को निश्चय में बदलने वाली धारण शक्ति का नाम धृति है, अतः बुद्धि के साथ धृति का भेद भी वे इसी के साथ बताते हैं।

यहाँ भगवान, यह कहने के उपरांत कि वे बुद्धि एवं धृति के गुणात्मक भेदों को पृथक-पृथक कहेंगे, एक शब्द का प्रयोग करते हैं—'**प्रोच्यमानमशेषेण**' अर्थात वे कहते हैं कि बुद्धि और धृति के विषय में जो-जो आवश्यक बातें हैं, उन सबको मैं विस्तार से कहूँगा, जिसके बाद फिर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाएगा।

इन सबमें वे सर्वप्रथम सतोगुणी बुद्धि के विषय में कहते हैं कि सतोगुणी बुद्धि कर्त्ता को यह भान कराती है कि क्या उचित है और क्या अनुचित। संसार की ओर कामनासहित ले जाने वाली वृत्ति 'प्रवृत्ति' है तो वहीं परमात्मा की तरफ ले जाने वाली वृत्ति '**निवृत्ति**'। यह जानने से ये स्पष्ट हो जाता है कि करने योग्य कर्म कौन-सा है और न करने योग्य कर्म कौन-सा है, इसी से कर्त्तव्य एवं अकर्त्तव्य का निर्धारण हो पाता है।

श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि जिसको उचित, अनुचित, करणीय एवं अकरणीय का बोध है—उसे स्वतः ही भय एवं अभय का बोध हो जाता है। जिसका हृदय परमात्मा की ओर अनुरक्त है एवं जो विवेकसंगत कर्मों को करता है, उसकी बुद्धि सतोगुणी होती है और तब उसका जीवन निरापद एवं निर्भय हो जाता है।

(क्रमशः)

नास्ति गंगा समं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
गायत्र्यास्तु परं जाप्यं न भूतं न भविष्यति॥

अर्थात गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव के समान कोई देवता नहीं, गायत्री से श्रेष्ठ कोई जप नहीं।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

संकल्प की अपार शक्ति

(गतांक से आगे)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस हृदयस्पर्शी उद्बोधन में समस्त श्रोताओं को संकल्प की अपार शक्ति से परिचित कराते हुए कहती हैं कि संकल्प में हजार हाथियों के बराबर बल होता है। वे परमपूज्य गुरुदेव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए गायत्री परिजनों को स्मरण दिलाती हैं कि परमपूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन में साधना के जिस हिमशिखर को स्पर्श किया, उसका मूल आधार अटूट संकल्प ही था। गायत्री जयंती के पावन अवसर पर दिया गया उनका यह उद्बोधन हर गायत्री-उपासक को यह भी याद दिलाता है कि सही अर्थों में गायत्री मंत्र का उद्देश्य भी संकल्प का जागरण ही है। वंदनीया माताजी माँ गायत्री और माँ गंगा को एक बताते हुए कहती हैं कि माँ गंगा का अवतरण भी संकल्प का ही परिणाम है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

करुणा का स्रोत—अखण्ड ज्योति

बेटे, आपके सिर पर गायत्री माता तब तक सवार नहीं हो सकती, जब तक आप भगीरथ जैसा संकल्प नहीं करेंगे। जैसे युग के भगीरथ ने संकल्प लिया है और गायत्री माता बेटे उनके हृदय में विराजमान हैं और जिसके हृदय से करुणा का स्रोत फूटता है। आप जरा अखण्ड ज्योति को तो पढ़िए। वो क्या है? करुणा का स्रोत है। जो करुणा सुबह के समय फूटती है, बस, उसमें जो अंतःकरण से नहा लेता है, वो पा लेता है और धन्य हो जाता है और जो अंतःकरण से नहीं नहाया, वो प्यासा ही रह गया।

यहाँ एक सज्जन आए और कहने लगे कि माताजी! हमारे यहाँ अखण्ड ज्योति आती है, कई साल से आती है। अच्छा बेटा, आती है तो बहुत अच्छी बात है। फिर वह अपने आप बोल पड़े कि माताजी! आती तो है, पर मैं आपके सामने झूठ नहीं बोलूँगा। लखनऊ का था। 25 साल पहले 20 रुपये थे अब 25 रुपये हो गए। मैं पढ़ता नहीं हूँ। तो मैंने कहा कि बेटा हमें तेरे 25 रुपये नहीं चाहिए, तू किसी गरीब को दे देना, उसका उद्धार हो जाएगा।

पढ़ना है तो मँगाओ, नहीं पढ़ना है तो मत मँगाओ। इसको पढ़ेगा तो इससे तेरे दांपत्य जीवन से लेकर व्यक्तिगत जीवन तक, कौटुंबिक हो या सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जो समस्याएँ हैं, वो सुलझती हुई चली जाएँगी। पढ़ तो सही।

ज्ञान की गंगा में नहाएँ

अरे! अभागे पढ़ता तो है नहीं, अंतःकरण में जाता नहीं है, ज्ञान की गंगा में नहाता तो है नहीं, फिर कैसे तेरे पाप कटेंगे? तेरा पाप नहीं कटेगा। न इस जीवन में कटे न अगले जन्म में, तू तो ऐसा-का-ऐसा ही रहेगा। यह शब्द नहीं कहना था, पर मैं

आपके सामने जब आ ही गई हूँ तो मन खोल करके क्यों न कह देना चाहिए।

मन खोल करके मैं आपसे निवेदन कर रही हूँ कि इस गंगा में आप भावविभोर होकर के गोते लगाएँ। भावविभोर होकर के गोते लगाएँगे तो आपको अनेक मणि-माणिक्य मिलते हुए चले जाएँगे। ऐसी दौलत मिलती चली जाएगी, जिसका नाम हीरा है, पुखराज है, पन्ना है और जाने क्या-क्या है? वो अपार दौलत—अपार संपदा आपको मिलती हुई चली जाएगी।

मैंने निवेदन किया है कि गोता लगाएँगे तो पाएँगे, गोता नहीं लगाएँगे, किनारे पर ही बैठे रहेंगे तो बैठे रहिए आप गंगा के किनारे, प्यासे-के-प्यासे रहेंगे। "**जल बिन मीन प्यासी रे, मोहि सुन-सुन आए हासी रे।**" सुन-सुनकर हमें हँसी आती है कि गंगा के किनारे बैठे रहे और कुछ पाया भी नहीं। प्यासे-के-प्यासे ही रह गए, उस महासत्ता से भी जुड़े रहे और अज्ञान के अँधेरे में भी पड़े रहे। अरे इससे ज्यादा और क्या विडंबना हो सकती है।

जीवन में परिवर्तन लाएँ

यह विडंबना है कि जिससे हम जुड़े हैं, उसका हम अनुकरण नहीं कर सके। उसको अपने जीवन में हम उतार नहीं सके, हम प्रलोभन में ही पड़े रहे। हम मोह, माया की जंजीरों में ही जकड़े रहे। तो उससे जुड़ने से क्या लाभ हुआ? फिर तो ये भीड़ इकट्ठी हो गई। चलो सोमवती अमावस्या का मेला है। चलो गंगा जी नहाएँगे, चलो गायत्री जयंती मनाएँगे।

हम भी चल रहे हैं, आप भी चलिए। अच्छा बेटा चलो बहुत अच्छी बात है, पर गायत्री जयंती का अर्थ भी आपने समझा क्या? गायत्री माता को अपने अंतःकरण में भी उतारा क्या और जिससे आप जुड़े हैं, उसका अनुकरण भी क्या किया आपने?

अपने जीवन में कोई परिवर्तन भी लाए क्या? नहीं? सो तो हम नहीं लाए, जैसे-के-तैसे हैं। जैसे थे वैसे हैं, तो फिर आप कैसे शिष्य बन गए? कैसे गुरुजी से जुड़ गए? और कैसे माताजी के बेटे हो गए और कैसे गायत्री माता के साधक हो गए, जरा बताना तो सही। आप तो कुछ भी नहीं हो गए, जो कुछ आप कहते हैं, वही हो गए।

नागार्जुन रसायनशास्त्र के प्रख्यात ज्ञाता थे। उनसे मिलने अनेकों लोग आते तो वे उन्हें जीवन सुधारने व व्यक्तित्व बनाने की शिक्षा दिया करते थे। लोग उनसे बोले—"आप इतने प्रसिद्ध रसायनशास्त्री हैं। आप रसायन शास्त्र की शिक्षा दें तो आपका नाम और फैलेगा।" नागार्जुन ने उत्तर दिया—"रसायनशास्त्री तो कोई भी बन सकता है व बना सकता है। अच्छा इनसान बनने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है। हमें अपनी ऊर्जा व मनोयोग इसी दिशा में लगाना चाहिए।"

संकल्प लीजिए कि हम जहाँ जुड़े हैं, उनका हमको अनुकरण करना है। अपने जीवन में अनुकरण करना है और आगे हमको उसका विस्तार करना है।

बेटे, अनुकरण तो किया आपने कि एक कोने में जाकर बैठ गए। माताजी हम तो अनुकरण कर रहे हैं। क्या अनुकरण कर रहे हैं? जैसे

गुरुजी-माताजी हैं, हम वैसे ही बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। कैसे ? गुरुजी-माताजी ऐसा बोलते हैं, ऐसा चलते हैं, ऐसा कहते हैं, हम भी ऐसा ही कहेंगे। ये तो ऊपर की भाषा हुई न, अंतरंग से बनो और अंतरंग से बनकर गुरुजी का काम करो। बेटे, गुरुजी केवल कोने में नहीं बैठे। उन्होंने कितना विस्तार किया है, इस विराट स्वरूप को आप जरा देखो तो सही। आपने उनका विराट स्वरूप नहीं देखा।

विराट स्वरूप आपने देख लिया होता तो फिर आप राम की तरह से बन गए होते। कृष्ण की माँ ने विराट स्वरूप देखा था तो कृष्ण को समझ लिया था और कौशल्या ने राम का विराट रूप देखा था तो वो समझ गईं कि ये भगवान राम हो सकते हैं। ये भगवान का अवतार हो सकते हैं। तो फिर उनके गुण कैसे हो सकते हैं ? उनका गुण ऐसा हो सकता है तो फिर घरवालों का कैसा होना चाहिए ?

महान बनिए

बेटे, मैं आपसे निवेदन कर रही थी कि आप जब जुड़ रहे हैं और जुड़ चुके हैं, तो अपने अंदर उस भावना और श्रद्धा को थोड़ा-सा पनपने दीजिए और इसको ऊँचा उठने दीजिए। अभी तो वो छोटा-सा पौधा है, इसको वृक्ष के रूप में आने दीजिए, ताकि वृक्ष इतना बड़ा हो जाए कि हर व्यक्ति उस पेड़ के तले बैठ करके शांति अनुभव कर सके, संतोष अनुभव कर सके, प्रेरणा पा सके। आप ऐसे महान बनिए।

आप महान बनेंगे तो हमको संतोष भी होगा और प्रसन्नता भी होगी और हम ये भी कहेंगे कि हम अपने पीछे एक ऐसे जनसमूह, एक ऐसे संत छोड़ करके जा रहे हैं, जो हजारों और लाखों साल तक यह संत-परंपरा चलती हुई चली जाएगी। आपको देख करके लोग चलेंगे ? आप नहीं बने, तब नहीं चलेंगे।

आपको बनाने के लिए हम भरसक प्रयास कर रहे हैं और आप न बने तो फिर हम क्या कर सकते हैं ? बताइए आपके गले में तो नहीं डाल सकते हैं ? आपके हाथों-में-हाथ हम नहीं डाल सकते हैं, आपके पाँव-में-पाँव नहीं लगा सकते हैं।

गुरु से शिष्यों ने प्रश्न किया— ''गुरुवर! यदि परिस्थितियाँ विषम हों और उस अवधि में किसी जाग्रत आत्मा का जन्म हो तो क्या ऐसा संभव है कि वह आत्मा स्वयं को मिले अवसर को गँवा दे ?'' गुरु ने उत्तर दिया— ''शिष्यो! जाग्रत आत्माएँ कभी अवसर नहीं चूकतीं। वे जिस उद्देश्य को लेकर अवतरित होती हैं, उसे पूरा किए बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। जाग्रत वे कहलाते हैं, जो अदृश्य जगत् में रह रहे प्रकृति के प्रवाह को पहचानते हैं व परिवर्तन में सहायक बनते हैं। दूसरे जब आगे चलकर उन परिणामों को देखते हैं तो पछताते हैं कि हमने अवसर की उपेक्षा क्यों कर दी थी।''

हम तो केवल आपको विचार दे सकते हैं, आपको भावनाएँ दे सकते हैं।

जहाँ तक ऊपर उठाने का प्रश्न है, हम पूरी-पूरी कोशिश करेंगे। करते हैं और करते रहेंगे। आपने पाया भी होगा कि जब-जब आपके ऊपर कोई दिक्कत, कठिनाई, परेशानी आई है, हम उस परेशानी में कितने सहायक हुए हैं ? आपका

अंतःकरण बताता होगा, हमें बताने की आवश्यकता नहीं है कि हम बताएँ। हम बताएँगे तो यह अहंकार होगा।

हमारा जो फर्ज और कर्त्तव्य था, वो हमने पूरा किया। जो हमें करना है, वो तो हम आजीवन करेंगे। हमने यह बीड़ा उठाया है कि हमारे ऊपर कोई जोखिम आती होगी तो हम सहज उसको स्वीकार करेंगे, लेकिन आपको दलदल में से निकालने का पूरा-पूरा प्रयास करेंगे। आपके भाग्य को बदल देंगे, यह कोई गारंटी नहीं। बिलकुल गारंटी नहीं है। मनोकामना तो कहाँ किसी की पूरी हुई? किसी की पूरी नहीं हुई। दशरथ की नहीं हुई। सुभद्रा की नहीं हुई, तो आप किसकी मनोकामना पूरी कर देंगे।

नहीं बेटे, हमारे बस की बात तो है नहीं और कहीं चला जा। जिस पर तुझे विश्वास होता हो कि ये सारी मनोकामना पूरी कर देता है तो उसके पास में चला जा, हमारे बूते की तो बात नहीं है। हमारा तो जितना तप का अंश होगा और आपका जो प्रारब्ध का योग होगा, वो आपको मिलता हुआ चला जाएगा और चलता गया भी है। हम तो उसकी ओर आपको संकेत करते हैं कि चाहे आपके दुःख और कष्ट दूर होते होंगे कि नहीं होते होंगे, भगवान जाने। भगवान करे शक्ति हो तो हो ही जाए।

गुरुजी-माताजी की शक्ति

अभी एक लड़का आया था। उसका एक्सीडेंट हो गया और ऐसा भयंकर एक्सीडेंट हुआ कि उसे बचने की उम्मीद नहीं थी। वो कहता है कि उस समय ऐसा मालूम पड़ा कि गुरुजी-माताजी ने मुझे गोद में उठा लिया है और जिस दिन आया तो वो रो गया।

उसने कहा कि माताजी! उस दिन मैंने शक्ति का अनुभव किया कि वास्तव में शक्ति होती है। वह शक्ति मेरे साथ है। इधर से भी ट्रक और उधर से भी ट्रक, उसकी गाड़ी पिचककर बिलकुल चकनाचूर हो गई और वो उसमें बैठा रहा। केवल उसके पैर में फ्रैक्चर आया।

वो अभी लंदन से लौटा है और मसूरी गया है। बेटे औरों का भी कल्याण हुआ है। मैं नाम तो नहीं लूँगी, जिसकी कि 90% नस ब्लॉक पाई गई और यह कहा गया कि यह तो पाँच वर्ष पहले से नस ब्लॉक है।

उन्हीं के शब्दों में जिन्होंने कहा कि माताजी! मुझे कई बार याद आता रहा कि आपने और गुरुजी ने कहा था कि किसी को साथ में ले जाया कर, अकेला मत चला कर। जब देखो अकेला चलता रहता है। माताजी ऐसा मालूम पड़ा कि मैं इसी के लिए गया था कि जाने गुरुजी की शक्ति क्या है। आकर दोनों पैरों से लिपट गया।

माताजी! आपने कहा क्यों नहीं। अरे बेटा, कहती तो तेरा मनोबल नीचे गिर जाता। अगर यह कहती कि कोई अशुभ घड़ी आने वाली है, इसलिए हमको नहीं जाना चाहिए, हम तेरा मनोबल क्यों तोड़ेंगे।

हम तो कोई मरता भी होगा, तब भी यही कह देंगे कि अभी मरने वाला नहीं है। जानते हैं कि ये मरेगा और मर चुका है, पर हमने कभी किसी की आशा को नहीं तोड़ा। हमेशा आशावादी ही बने रहे। हमेशा जबान से यही कहा। हमने कभी किसी को गिराया नहीं है, जीवन भर उठाया है।

बेटे, पाँचवें दिन वह अपने काम पर चला गया। जिसका ऑपरेशन हुआ हो और जिसके हृदय की नस-नली 90% ब्लॉक हो, आप अनुमान लगाइए कि वो कैसे कामयाब हो गया?

बेटा यह तो हमारा कर्त्तव्य था, हमने पूरा किया है। भगवान करे सभी का भला हो। प्रारब्धवश किसी को सहयोग नहीं मिल सकता हो तो यह उसका प्रारब्ध हो सकता है, लेकिन

हमारे मन में तो सभी के लिए शुभकामनाएँ और सद्भावना है और हर किसी के लिए हम करते रहेंगे।

चाहे हमें जीवन का कोई भी मुआवजा क्यों न चुकाना पड़े और चाहे कोई भी मुसीबत हमको मोल क्यों न लेनी पड़ी हो। कोई शारीरिक रोग अपने ऊपर लेना पड़ा हो तो लेंगे भी। रामकृष्ण परमहंस को अंतिम समय पर गले का कैंसर हो गया था।

बेटे! एक लड़का आया। उसने मुझसे एक सवाल किया तो मालूम पड़ा कि कोई ऐसे ही बददिमाग है। उसने कहा कि गुरुजी की उम्र कितनी हो गई? मैंने कहा कि हो गई होगी अस्सी साल के करीब। तो उनके कमरे में ताला क्यों लगा रहता है? जरूर कोई बात होगी।

उसने कहा कि तो बीमार होने चाहिए। क्यों बीमार होने चाहिए? क्या मतलब है तेरा? छत्तीस को उठाकर अभी फेंक देंगे। अकेले उनकी वाणी के सामने तो ठहर ही नहीं सकता, शरीर की बात तो पीछे आएगी। पहले तो जबान ही ऐसी है कि तू टिक ही नहीं सकेगा।

बीमार क्यों पड़ेंगे? हम बीमार नहीं हैं और न कभी बीमार हो सकते हैं। कभी नहीं पड़ेंगे, क्यों पड़ेंगे? मान लीजिए 1% हो भी जाएँ तो जिन्होंने लाखों को जबान दी, सो उनका क्या होगा?

बेटे! लाखों को जबान देते हैं और कहते हैं कि बेटा तेरा भला कर देंगे, तो चुकाना नहीं पड़ेगा क्या? उसे या तो बेटा चुकाएगा या माँ-बाप चुकाएँगे। कर्जा तो कर गए तो कोई तो उसे चुकाएगा। हम इसे चुकाने में समर्थ हैं तो हमको खुशी होगी कि हम आपकी कोई सेवा कर पाए।

माँ-पिता का हृदय

बेटे, हम बच्चों की सेवा कर पाए, इससे अच्छा हमारा और सौभाग्य क्या हो सकता है? छोटा बच्चा होता है, पेशाब करता है, टट्टी करता है और माँ पलट-पलट करके खुद गीले में सोती रहती है और बच्चे को सूखे में सुलाती रहती है। बीमार पड़ता है तो सारी-सारी रात जागती है। कौन? माँ जागती है। कौन जागता है? पिता जागता है, नौकरी भी करता है, डॉक्टर को भी लाता है, पेट पर पट्टी बाँधता है।

घर में खाने को नहीं है, लेकिन बच्चे के लिए चाहे कर्जा लाना पड़े, चाहे जो भी लाना पड़े, लेकिन बच्चे को हर हालत में वो डॉक्टर के पास ले जाता है, दवा-दारू कराता है। उसके भविष्य की चिंता करता रहता है कि मेरा बच्चा कैसे महान बने। कैसे इसको ऊँचा उठाऊँ, कैसे इसको पढाऊँ-लिखाऊँ। कैसे इसको रोजी-रोटी दिलाऊँ, जाने क्या-क्या ख्वाब माँ-बाप देखते रहते हैं। बेटे! बिलकुल हमारी दशा भी वही है।

सच मानना बिलकुल हमारी दशा वही है। आपके ऊपर जब कोई दुःख-कष्ट आता है तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह वज्र मानो हमारे ऊपर टूटा है। इस वज्र को कैसे हल करें, किस तरीके से हल करें? आप नहीं जानते कि जब हम हल नहीं कर पाते तो हमारे अंतःकरण में आपके लिए जो पीड़ा होती है, उसको हम ही जानते हैं।

माताजी! फिर पीड़ा से आप क्या करते हैं? रोते रहते हैं? नहीं बेटे, रोते तो आप होंगे, हम रोते तो नहीं हैं, पर हम उसी क्षण तिलमिला जाते हैं और पीड़ित के पास जाते हैं। उसके पास जाते ही यह कहते हैं कि बेटी तुझे परेशान होने की जरूरत नहीं। परेशान मत होना। तेरे साथ तेरी माँ है, तेरा पिता है। बेटे! परेशान मत होना, जरा भी हैरान मत होना, हम तुम्हारे साथ हैं न। हम तुम्हारे सुख में ही साथ नहीं हैं, लेकिन आपके दुःख में भी हम जरूर आपको मनोबल देंगे, आपको सहारा देंगे, आपको

हिम्मत देंगे, आपको बल देंगे, आपको प्रेरणा देंगे, ताकि उस संकट की घड़ी को आप झेल सकें।

आप तिलमिलाकर के पागल हो जाएँगे, मर जाएँगे, न मालूम क्या-क्या हो जाएगा? पर हम आपको डगमगाने नहीं देंगे। कोई भी परिस्थिति क्यों न हो, चाहे आपके इनकम टैक्स की हो, चाहे सेल्स टैक्स की हो, चाहे आपकी पारिवारिक हो, चाहे जो भी हो, हर हालत में हम आपको बल और शक्ति देते हुए चले जाएँगे। अभी भी दे रहे हैं और आगे भी हम नहीं भी रहेंगे, तब भी आप आना यहाँ।

अखंड दीप में गुरुसत्ता

आपको आमंत्रण है कि जो आपने पल्ला पकड़ा है तो इसको छोड़ना मत। आप फिर यहाँ आना और वही प्रेरणा, वही शांति और संतोष, वही शक्ति और भक्ति आपको मिलती हुई चली जाएगी, जो इस समय आपको मिल रही है। आप शांतिकुंज में आ करके एक-दो मिनट बैठना तो सही, आप अखंड दीपक को प्रणाम तो करना और उसमें देखना कि गुरुजी-माताजी दिखाई पड़ते हैं कि नहीं दिखाई पड़ते।

शांतिकुंज में आना और देखना, हर जगह आपको गुरुजी-माताजी दिखाई पड़ेंगे। यदि आपका दृष्टिकोण सही है तो और आपका दृष्टिकोण गलत है तो हम बैठे हैं तब भी आपको नहीं दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि आपने अपने हृदय को नहीं खोला।

आँख को खोला है और आपने शरीर देखा है, लेकिन आपने उन सिद्धांतों को, भावनाओं को अंतरंग में झाँक करके नहीं देखा है। जैसे कि काकभुशुंडि ने भगवान राम के पेट में जाकर के देखा था।

उतना साहस आप कहाँ जुटा पाए, उतना साहस आप नहीं जुटा पाए। इतना साहस आप जिस दिन जुटा लेंगे तो फिर आप अंत:करण में देख पाएँगे। अंतरंग को जब आप देख लेंगे तो फिर आप निहाल हो जाएँगे।

बेटे, आप निहाल हो जाएँगे जैसे कि शक्ति को पाकर के हम निहाल हुए, आप भी उस शक्ति को पाकर के निहाल हो जाएँगे, जो अनवरत रूप से बरस रही है, लेकिन हम कैसे भाग्यहीन हैं, जो उसको नहीं ले पा रहे हैं, उसको सँभाल नहीं पा रहे हैं। उसको हम आँचल भरकर के नहीं ले पा रहे हैं। हम झोली नहीं फैला रहे हैं और न हम अपने हृदय के कपाट को खोल रहे हैं। जरा खोलें तो सही और फिर देखिए गायत्री माता आती हैं कि नहीं आतीं।

अरे, माताजी! कल आई थीं, हमने सपने में देखा था गायत्री माता को। कैसा देखा? हंस पर सवार थी, मुकुट पहने थी और कुछ कह रही थी, कुछ हँस रही थी। अच्छा बेटा, इतनी दूर से गायत्री माता आई तो फिर तेरे जीवन में कोई परिवर्तन हुआ कि नहीं? सो तो मेरे जीवन में कुछ नहीं हुआ। तो फिर कहाँ से स्वप्न में गायत्री माता आई। स्वप्न में तो जाने क्या-क्या देखते हैं, सपने में पानी में डूबना देखते हैं। ब्याह-शादी देखते हैं और जाने क्या-क्या देखते हैं। कहीं रेल में चलने, हवाई जहाज में चलने के सपने देखते हैं।

संकल्प के पर्व पर संकल्प लें

बेटे, गायत्री माता की अनुकंपा तेरे ऊपर बरसती भी रही तो भी तूने नहीं देखा। तू अनभिज्ञ ही बना रहा। उस अनुकंपा को ग्रहण करता। जैसे गांधी जी ने हरिश्चंद्र नाटक देखा था और नाटक देख करके अपने जीवन का परिवर्तन कर डाला। हरिश्चंद्र अपने गुरु के लिए बिक गया था। आप तो अंत तक स्वप्न देखते रहते हैं, नींद आती नहीं है, पेट को ज्यादा भर लेते हैं, स्वप्न नहीं आएँगे तो और क्या आएगा। वही स्वप्न नाना प्रकार का रूप ले लेते हैं। हम नाना प्रकार का रूप न दें और उसको सही स्वरूप दे दें तो फिर हम समझेंगे कि वास्तविकता को हमने पा लिया है।

मेरा आपसे यही निवेदन है कि आज यह संकल्प का पर्व है और आज के ही दिन माँ गायत्री का अवतरण हुआ, माँ गंगा का अवतरण हुआ। माँ गंगा को लाने में भगीरथ ने तपस्या की और युग के भगीरथ ने ज्ञान की गंगा लाने के लिए संकल्प किया और माँ गायत्री को लाने में सफल हो गए और जनमानस के हृदय में उन्होंने उतार दिया। आप भी संकल्प कीजिए कि जो बचा हुआ शेष कार्य है, उसको हम पूरा करेंगे। जैसे कि मैंने अभी प्रथम बार कहा था, उसकी पुनरावृत्ति तो होती जरूर चल रही है, लेकिन जो मुँह में शब्द आते हैं, वो रुकते नहीं हैं, वो बार-बार ही कहने चाहिए, बार-बार ही पाठ कराना चाहिए।

युधिष्ठिर से **'सत्यम् वद'** शब्द याद करने के लिए कहा गया। अगले दिन कहा कि तुमको क्या पाठ याद हो गया? कहा नहीं गुरुजी! अभी नहीं हुआ और सब लोग कहते हुए चले गए कि हमको याद हो गया, सुन लीजिए और सब कहते हुए चले गए।

गुरुजी ने युधिष्ठिर से कहा कि क्या बात है तुम क्यों नहीं कहते हो? तुम तो इतने योग्य हो। उन्होंने कहा कि गुरुदेव! ये जबान से कह रहे हैं, मैंने अभी धारण नहीं किया है। जिस दिन मैं धारण कर लूँगा, उस दिन मैं कह दूँगा और जिस दिन उन्होंने धारण कर लिया, उसी दिन उन्होंने सुना दिया अर्थात हमको धारण करना चाहिए और संकल्प करना चाहिए कि हम भी इस योग्य बनें कि माँ गायत्री की अनुकंपा हमारे ऊपर बरसती हुई चली जाए। फिर आपके सामने तो साक्षात् गुरुजी बैठे हैं। गायत्री माता की इतनी कृपा आपके ऊपर बरसती रही है और हर परिस्थितियों में माँ सहारा देती हुई चली गई हैं और अपने कलेजे से लगाती ही चली गई हैं और कहा है कि बेटे मैं तेरे साथ हूँ। तूने तो मेरा उद्धार किया ही है, पर मैं भी तेरा उद्धार करके रहूँगी और सही मानना गायत्री माता का उद्धार हुआ, गायत्री माता के बेटे का उद्धार हुआ। दोनों का उद्धार हो गया और साथ-साथ में आपका भी उद्धार हो गया। आपका भी होगा, चूँकि एक-से-एक जुड़ते हुए चले गए न। बेटे, आप का भी उद्धार हो गया।

भगवान करे और भी जो थोड़ा-बहुत रह गया, वो भी आपका उद्धार हो जाए। अब मैं यहीं पर अपनी बात समाप्त करती हूँ। आज का यह पर्व, गायत्री माता का पर्व, शक्ति का पर्व है। उस शक्ति से हम प्रार्थना करते हैं कि हे माँ गायत्री! आपकी शक्ति सारे-के-सारे जनमानस में फैलती हुई चली जाए और ये शक्ति आपको भी मिले, आपके परिवार को मिले, आपसे मिलकर के सारी जनता को मिले, समाज को मिले, राष्ट्र को मिले और सारे विश्व को शक्ति मिले। जिस शक्ति की प्यास में हम तड़प रहे हैं, जिस शक्ति के लिए जनमानस तिलमिला रहा है। उस शक्ति को पा करके धन्य हो जाएँ। खुशहाल हो जाएँ, प्रसन्न हो जाएँ, संतुष्ट हो जाएँ। बस, इतनी ही बात कहनी थी। भगवान आपका कल्याण करें। **॥ ॐ शांति ॥**

तत्त्वचिंतनतः प्रज्ञा जागत्यत्मिविनिर्मितौ।
प्राज्ञः प्रसज्जते चात्मविनिर्माणे च सम्भवे॥
तस्यातिसरला विश्वनिर्माणस्यास्ति भूमिका।
कठिना दृश्यमानापि ज्ञानं कर्म भवेत्ततः॥

—प्रज्ञापुराण 1/42-43

अर्थात तत्त्व चिंतन से प्रज्ञा जगती है। प्रज्ञावान आत्मनिर्माण में जुटता है। जिसके लिए आत्मनिर्माण कर पाना संभव हो सका है, उसके लिए विश्वनिर्माण की भूमिका निभा सकना अति सरल है, भले ही वह बाहर से कठिन दिखती है; क्योंकि ज्ञान ही कर्म बनता है।

वसुधैव कुटुंबकम् का सूत्रधार बना विश्वविद्यालय

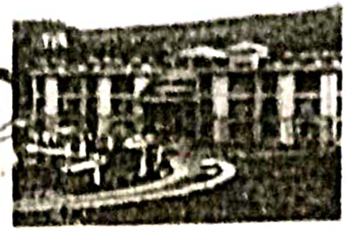

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य, विशेषकर मध्य-पूर्व देशों में जारी संघर्षों और अस्थिरता के बीच, मानवता एक बार फिर शांति, विश्वास और सहअस्तित्व के मूल प्रश्नों से जूझ रही है। युद्ध और विभाजन की इस पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट होता जा रहा है कि स्थायी समाधान केवल राजनीतिक या सैन्य प्रयासों से नहीं, बल्कि मानवीय चेतना के परिष्कार, नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही संभव है।

ऐसे चुनौतीपूर्ण समय में देव संस्कृति विश्वविद्यालय पूज्य गुरुदेव की दूरदर्शी विचारधारा को जीवंत करते हुए एक वैश्विक मार्गदर्शक की भूमिका निभा रहा है। पूज्य गुरुदेव का स्पष्ट संदेश था कि **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** केवल एक आदर्श नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के भविष्य की अनिवार्य दिशा है। उन्होंने अध्यात्म को जीवन की व्यावहारिक शक्ति मानते हुए व्यक्ति-निर्माण के माध्यम से विश्व निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

इसी दृष्टि को मूर्तरूप देते हुए आयोजित अंतरराष्ट्रीय आध्यात्मिक रिट्रीट ने विश्व के विभिन्न देशों से आए युवाओं को एक साझा मंच प्रदान किया। यहाँ संवाद, आत्मचिंतन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से वे न केवल एकदूसरे को समझ पाए, बल्कि वैश्विक एकता और शांति के वास्तविक सूत्रों को भी आत्मसात् कर सके।

इस विशेष आयोजन में अखिल विश्व गायत्री परिवार के युवा प्रतिनिधियों ने भाग लिया, जो विश्व के लगभग 80 देशों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

उद्घाटन सत्र के दौरान देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने अपने प्रेरक संबोधन में वैश्विक समाज के निर्माण में अध्यात्म, नैतिक मूल्यों तथा सामूहिक विकास की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए युवाओं को आत्मविकास एवं मानवता की सेवा के लिए प्रेरित किया। यह समागम अत्यंत प्रेरणादायी एवं ऐतिहासिक रहा।

विगत दिनों इरास्मस + स्टाफ मोबिलिटी फॉर टीचिंग प्रोग्राम के अंतर्गत देव संस्कृति विश्वविद्यालय को अंतरराष्ट्रीय अकादमिक सहयोग के क्रम में रेव. डॉ. फिलिप जोजेफ क्राउज़े के स्वागत का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनका यह शैक्षणिक प्रवास अंतरधार्मिक संवाद एवं मूल्याधारित शिक्षा विषय पर केंद्रित रहा।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने रेव. डॉ. क्राउज़े के साथ संवाद किया, जिसमें आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में अध्यात्म की भूमिका, अंतरधार्मिक समझ को सुदृढ़ करने की आवश्यकता तथा वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सांस्कृतिक संवाद के महत्त्व जैसे विषयों पर सार्थक विचार-विमर्श हुआ। प्रवास का समापन प्रमाणपत्र वितरण समारोह के साथ हुआ, जिसे प्रतिकुलपति जी एवं रेव. डॉ. क्राउज़े द्वारा संयुक्त रूप से संपन्न किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में विगत दिनों राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के अध्यक्ष श्री किशोर मकवाना जी का आगमन हुआ। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने उनका स्वागत एवं अभिनंदन किया।

आगमन के दौरान दोनों के मध्य सौहार्दपूर्ण भेंटवार्त्ता संपन्न हुई, जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय की भूमिका, संस्कृति-आधारित शिक्षणपद्धति तथा समाज-निर्माण में शिक्षा की सार्थक सहभागिता जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर गंभीर एवं विचारोत्तेजक संवाद हुआ।

अपने प्रवास के दौरान श्री मकवाना जी ने विश्वविद्यालय परिसर का अवलोकन किया। उन्होंने यहाँ की शिक्षण-व्यवस्था, शोध गतिविधियों एवं आध्यात्मिक वातावरण की सराहना करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय को एक आदर्श शिक्षण संस्थान बताया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के एनसीसी कैडेट्स के साथ आयोजित विशेष संवाद सत्र में विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी कैडेट्स से भेंट कर उन्हें जीवन एवं नेतृत्व से जुड़े महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान किए। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थियों को अनुशासन, राष्ट्रसेवा एवं व्यक्तित्व निर्माण के मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि एनसीसी केवल एक प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं, बल्कि युवाओं में नेतृत्व क्षमता, जिम्मेदारी की भावना एवं राष्ट्रभक्ति विकसित करने का एक सशक्त माध्यम है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अर्जित उपलब्धियों के क्रम में विगत दिनों राजधानी दिल्ली स्थित आनंद धाम आश्रम में आयोजित अस्मिता खेलो इंडिया महिला लीग नेशनल 2026 प्रतियोगिता में छात्राओं ने उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए स्वर्णपदक हासिल कर विश्वविद्यालय का नाम राष्ट्रीय स्तर पर गौरवान्वित किया। इस प्रतिष्ठित प्रतियोगिता में विश्वविद्यालय की छात्राओं ने शानदार प्रदर्शन करते हुए स्वर्ण पदक अपने नाम किए।

इस उल्लेखनीय उपलब्धि के लिए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने विजेता छात्राओं को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की। इसी क्रम में बीते दिनों प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली प्रतिष्ठित अखिल भारतीय संगीत प्रतियोगिता के अंतर्गत इस वर्ष 63वीं प्रतियोगिता का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय को सहभागिता हेतु आमंत्रित किया गया।

इस राष्ट्रीय स्तर के आयोजन में भाग लेने के लिए विश्वविद्यालय के संगीत वाद्य अध्ययन केंद्र से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का दल प्रयागराज पहुँचा। उल्लेखनीय है कि प्रतियोगिता में देशभर से लगभग 600 प्रतिभागियों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने विभिन्न संगीत एवं नृत्य विधाओं में भाग लेते हुए उत्कृष्ट प्रदर्शन किया तथा अनेक पुरस्कार अर्जित कर विश्वविद्यालय का गौरव बढ़ाया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी प्रतिभागियों को बधाई देते हुए कहा कि भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन में युवाओं की सक्रिय सहभागिता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के श्री सदाशिव परिसर, पुरी से आए स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का शैक्षणिक भ्रमण सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस अवसर पर विश्वविद्यालय परिवार द्वारा सभी विद्यार्थियों का स्वागत एवं अभिनंदन किया गया।

भ्रमण के दौरान विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय की विभिन्न शैक्षणिक, शोध एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का अवलोकन करते हुए उनके विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। साथ ही उन्होंने परिसर का भ्रमण कर यहाँ के आध्यात्मिक एवं संस्कारमय वातावरण का अनुभव किया, जो उनके लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहा। ❑

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला

विद्याओं का जीवन-रहस्य

विद्याओं का जीवन-रहस्य नवयुग को नवीन ज्ञान प्रदान करेगा। इससे जीवन में बोध और जगत् में समृद्धि के अवसर व आसार बढ़ेंगे। ज्ञान-विज्ञान, कला की कुशलता के प्रायः सभी आयाम विद्याओं की व्यापकता में समा जाते हैं। विविध प्रकार की जानकारियाँ व इनकी सही समझ—ज्ञान की गरिमा बढ़ाती हैं।

ज्ञान का अनुभव, इसके प्रयोग-उपयोग की सही विधियाँ; ज्ञान को विज्ञान का स्वरूप प्रदान करती हैं। जबकि ज्ञान में सौंदर्य की सरसता, इसके रसानुभूति की सम्मोहक अभिव्यक्ति; ज्ञान को कला की कलात्मक कुशलता प्रदान करती है। ज्ञान एक है, लेकिन इसके रूप अनेक हैं। जिस तरह से एक हिमालय से जल के अनेकों प्रवाह व प्रपात निकलकर नदियाँ व झरने कहलाते हैं, ठीक उसी तरह से एक ज्ञान के अनेक रूप विद्याओं की विविध धाराएँ बनकर प्रवाहित होते हैं।

यदि ज्ञान की इन विद्या-धाराओं का विभाजन या वर्गीकरण किया जाए, तो इन्हें मुख्यतया तीन रूपों में समझा जा सकता है। इनमें से पहला है—प्रकृति का ज्ञान—प्रकृति विद्या। इसका दूसरा रूप है—मनुष्य का ज्ञान—मानव विद्या। अब तीसरे और अंतिम रूप पर विचार करें, तो इससे जीवन-जगत् दोनों जुड़े हैं। यह परमात्मा का परमज्ञान-अध्यात्म विद्या है।

ज्ञान या विद्या की इन्हीं तीन धाराओं में जीवन के सभी रहस्य प्रकट व प्रत्यक्ष होते हैं। जीवन की समग्र अनुभूति व अभिव्यक्ति होती है। सार रूप में यह सत्य बार-बार कहा-सुना और समझा जा सकता है कि जब सत्य विचार व समझ के दायरे में रहता है, तो वह ज्ञान है, लेकिन जब यही प्रयोग-परीक्षण, अनुभव-अनुसंधान के निष्कर्षों की कसौटी पर कसा जाता है, तो यह विज्ञान बनकर प्रत्यक्ष होता है। ज्ञान के सत्य की रसानुभूति और इसकी सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति कला कही जाती है।

सृष्टि-सृजन के आरंभ से लेकर अब तक मानव ने गहन ज्ञान-साधनाएँ संपन्न की हैं। उसने सूक्ष्मता और व्यापकता में, गहनता व गहराई में जीवन को अनुभव किया है। विद्याओं के रूप में उसने जीवन के रहस्य उजागर किए हैं। इनके अनेकों आयामों के अनुसार विद्याएँ भी अनेकों हैं। इनकी संख्या अलग-अलग विवरण-वर्णन के अनुसार अलग-अलग हैं। इस बारे में यही कहा जा सकता है कि जितने विचारक, उतने विचार; जितने विशेषज्ञ, उतने मत। लेकिन इन सभी को सम्मिलित कर लेने पर इनकी मौलिकता, मौलिक विशेषताएँ तीन ही होंगी और इनका सबल आधार जीवन ही बना रहेगा।

जब सत्य विचार व समझ के दायरे में रहता है, तो वह ज्ञान है। लेकिन जब यही प्रयोग-परीक्षण, अनुभव-अनुसंधान के निष्कर्षों की कसौटी पर कसा जाता है, तो यह विज्ञान बनकर प्रत्यक्ष होता है। ज्ञान के सत्य की रसानुभूति और इसकी सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति कला कही जाती है।

यदि इस विभाजन—वर्गीकरण के अनुसार विचार करें तो जीवन का सबल, समर्थ आधार केवल प्रकृति है। जीवन इसी से जन्मा है और जीवन के सभी साधन-संसाधन इसी से प्राप्त होते हैं। इसका स्वरूप अनंत और व्यापक है। नीहारिकाएँ—तारामंडल, ब्रह्मांड सभी इसकी व्यापकता में समा जाते हैं। ग्रह-नक्षत्र, सूरज-चाँद, हमारी धरती सब कुछ इसी में है।

यदि प्रकृति के सत्य को समझने की कोशिश करें, तो इसमें एक नहीं अनेकों ब्रह्मांड हैं। यदि प्रकृति को देश की मान्यता दें, तो एक ब्रह्मांड शायद इसके छोटे से गाँव की जगह ले सके। यदि धरती के बारे में सोचें, तो समूची प्रकृति में यह एक छोटा-सा घरौंदा भर है। इससे अधिक इसका कोई अस्तित्व नहीं है। वैज्ञानिक गैलीलियो तो इस सच से इतना चकित हुआ कि उसने कहा—यदि ब्रह्मांड का नक्शा बनाएँ, तो उसमें धरती के लिए एक बिंदु रखना भी शायद संभव नहीं होगा। प्रकृति की व्यापकता कुछ ऐसी ही है, जिसमें ब्रह्मांड की विराटता भी क्षुद्र लगती है।

ऐसी अवस्था में प्रकृति का ज्ञान व प्रकृति विद्या का अर्थ बस इतना ही है कि हम धरती और उसके प्राकृतिक वातावरण का अध्ययन इसके अंतर्गत करते हैं। इसमें जब धरती के प्राकृतिक वातावरण को समझने की बात होती है, तो ब्रह्मांडीय आयाम भी इसमें सहजता से शामिल हो जाता है।

अपना गांव और अपना देश अलग-अलग नहीं हैं। अपनी धरती एवं अपना ब्रह्मांड भी अलग-अलग नहीं हैं। दोनों ही एकदूसरे को प्रभावित करते हैं और एकदूसरे से प्रभावित होते हैं। इसलिए प्रकृति के ज्ञान में, प्रकृति विद्या में जीवन एवं जगत् से जुड़े सभी आयाम शामिल हैं। जगत् जो जीवन चेतना को धारण करता है, जीवन चेतना के विविध रूप जो जगत् में अभिव्यक्त होते हैं; सबके सब इसमें सम्मिलित हैं।

अब यदि मानवविद्या, मानविकी व मानव ज्ञान की बात करें; तो इसके भी आयाम अनेक हैं। इसमें मानव मन, मानव जीवन का हर रूप समाया है। व्यक्ति-परिवार-समाज का सारा ताना-बाना इसी में बुना और बना है। मानव के विकास का ज्ञान, नृतत्त्व विज्ञान, सभ्यता व संस्कृति के आयाम इससे अलग नहीं हैं। इसकी शाखाओं-प्रशाखाओं की गणना गिनती करें, तो काफी लंबी सूची तैयार करनी पड़ेगी। यह सूची इतनी लंबी और बड़ी हो जाएगी कि शायद इसमें भी काफी कुछ छूट जाए। आरंभ से लेकर अभी तक इस बारे में काफी पड़ताल हुई है, शोध प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं। इनके निष्कर्ष इस विद्या में निरंतर नई-नई बातें जोड़ते जा रहे हैं। मानव जीवन की व्यवस्था व विकास के लिए संभवतः यह अति आवश्यक भी है।

इसके बाद परमात्मा का ज्ञान या अध्यात्म विद्या है। इसकी ईश्वरीयता को श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने अपना स्वरूप कहा है। '**अध्यात्मविद्या विद्यानां**' (गीता 10/32)—विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या हूँ। इस ईश्वरीय ज्ञान में इतना प्रकाश है, जिससे मानव व प्रकृति दोनों को ठीक-ठाक समझना संभव है, लेकिन इस महान विद्या के साथ अनेकों विचित्र विडंबनाएँ भी जुड़ी हैं। इसे स्वीकार करने और इनकार करने वालों में शुरू से आपसी होड़ रही है। कभी जितने स्वीकार करने वाले रहे, उससे ज्यादा इसे इनकार करने वाले हो गए। कभी ऐसा भी समय आया, जब इनकार करने वालों से ज्यादा इसको स्वीकारने वाले हो गए।

अभी तक की कथा यही कहती रही है कि असुरों और असुरता ने इसका सदा ही इनकार किया है, इसको अस्वीकार किया है। दैवी प्रकृति के लोग इसे सदा से अपनाते और स्वीकारते रहे हैं।

देवों और असुरों का विभाजन सदा ही अध्यात्म विद्या के स्वीकार व इनकार के आधार पर किया जाता रहा है, लेकिन असुरों की असुरता ने बीते युगों के इस सच को बदल दिया है। अब उन्होंने अध्यात्म विद्या के विशेषज्ञ होने का स्वांग रचा है। इस नए वेश-परिवर्तन से असुरों ने धर्म में भ्रम पैदा कर दिए हैं। उनके इस ढोंग से धर्म प्रवचन का मनोरंजन और अध्यात्म चमत्कारों का आडंबर बन गया है। समस्त भ्रांतियों का निराकरण करने वाली अध्यात्म विद्या में भ्रम की घुसपैठ होने से मानव मन उद्भ्रांत-विभ्रांत है। उसे अब प्रकृति विद्या व मानव विद्या भी समझ में नहीं आ रही है, जबकि असुरता प्रवचन का परिहास करते हुए अपना मनोरंजन कर रही है, जनसामान्य को मूर्ख बना रही है। असुरों का अध्यात्म धर्म धन-अर्जन का साधन बना हुआ है।

पहले के समय में अध्यात्म के स्वीकार व इनकार के आधार पर दो प्रकार की जीवन-दृष्टि का विकास किया गया था। इसमें से प्रथम अध्यात्म के स्वीकार के आधार पर विकसित हुई चेतनाप्रधान जीवन-दृष्टि थी, जबकि दूसरी जड़वादी की भौतिकवादी या जड़ जीवन-दृष्टि थी। अब की स्थिति में असुरों ने ऐसा विकट भ्रमजाल का व्यामोह फैलाया है कि अध्यात्मवाद के वेश में सभी भौतिकवादी बन गए हैं। बातें ईश्वर व ईश्वरीयता की हैं, चर्चा अध्यात्मदर्शन की है; लेकिन आचरण भौतिकता से ओत-प्रोत है।

इसका आरंभ पहले कभी भ्रांति की बयार से हुआ था, लेकिन अब की स्थिति में यह भ्रांति की बयार आँधी से कहीं अधिक चक्रवाती तूफान बन गई है, जिसके झोकों में आध्यात्मिक आचरण के सभी मूल्य व मानक ध्वस्त हो रहे हैं। धर्म के महावट गिर-उखड़कर टूट रहे हैं। यही वजह है कि विद्याएँ जीवन के रहस्य को उजागर न करके उन्हें सघन अँधेरे के आवरण से ढक रही हैं।

इस आए हुए परिवर्तन को परिवर्तित करने के लिए प्रकाश का वेग-संवेग का तीव्र वेग अनिवार्य हो गया है। आने वाले समय में आँधियाँ उठेंगी अवश्य, लेकिन ये अँधेरे की न होकर प्रकाश की होंगी। तब इस प्रकाश में भ्रांति के रूप मिटेंगे। अध्यात्म—आडंबर का प्रदर्शन न बनकर, आचरण का निष्कपट दर्शन होगा। तब भौतिकता की जड़वादी जीवन-दृष्टि की जगह अध्यात्मवादी चेतन-दृष्टि का विकास-विस्तार होगा। इस बदलाव की बदली हुई स्थिति में प्रकृति विद्या एवं मानव विद्या की भटकन भी दूर होगी। सत्य-का-सत्य स्वरूप प्रत्यक्ष होगा।

आने वाले समय में आँधियाँ उठेंगी अवश्य, लेकिन ये अँधेरे की न होकर प्रकाश की होंगी। तब इस प्रकाश में भ्रांति के रूप मिटेंगे। अध्यात्म— आडंबर का प्रदर्शन न बनकर, आचरण का निष्कपट दर्शन होगा। तब भौतिकता की जड़वादी जीवन-दृष्टि की जगह अध्यात्मवादी चेतन-दृष्टि का विकास-विस्तार होगा।

ऐसा होने से विद्याओं के सभी रूप जीवन-रहस्य को उजागर करेंगे। सभी विद्याओं के सकारात्मक प्रयोग-उपयोग, जीवन व जगत् में सार्थक परिणाम लाएँगे। हरेक के लिए सद्बुद्धि व सन्मार्ग का पथ प्रशस्त होगा। विद्वान, विशेषज्ञ के साथ सामान्य जन सभी इस स्थिति से लाभान्वित होंगे। ऐसी स्थिति में विज्ञान का सृजन-अनुसंधान भी अपनी संपूर्ण सामर्थ्य के साथ प्रकट होगा। ❑

संवेदनात्मक संवाद की आवश्यकता

गायत्री परिवार की एकता को बनाए रखने हेतु निकटता, दूरदर्शिता और स्पष्टता आवश्यक है। हमारे बीच संवाद और संप्रेषण की एक ऐसी प्रणाली होनी चाहिए, जिससे परिवार के सदस्य एकदूसरे के साथ अपने मन की बातें साझा कर सकें। कुछ परिवारों में देखने को मिलता है कि जब कोई समस्या आती है तो लोग चुप हो जाते हैं और धीरे-धीरे वह बात दूरी का कारण बन जाती है।

जबकि इसके विपरीत, खुलकर बात करना, समाधान का मार्ग खोलता है। कोई विशेष क्षेत्र, वर्ग या वंश के कारण हम किसी को दूर नहीं कर सकते। सभी को समान स्नेह और आत्मीयता से जोड़कर रखना ही हमारा ध्येय होना चाहिए। आज के समय में जहाँ बिखराव की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं, वहाँ यह आवश्यक है कि हम अपने भीतर सहनशीलता, धैर्य और परस्पर समझ को बढ़ाएँ। किसी को सुधारने का प्रयास प्रेम और श्रद्धा से करें। केवल निंदा या उपेक्षा से कोई सुधार नहीं होता।

गायत्री परिवार के पास वर्षों का अनुभव है। परिवार के सभी सदस्यों को चाहिए कि वे इसे आत्मसात् करें और जीवन में उतारें। यदि कहीं कोई त्रुटि हो रही हो तो उसे मिलकर ठीक करें। सबका मार्गदर्शन एकदूसरे को संबल और सहयोग देकर करें। तभी हम संगठन के रूप में सशक्त बन पाएँगे। इन दिनों ऐसे व्यक्तित्वों की खोज की जा रही है, जो समाज के लिए सहायक सिद्ध हो सकें। ऐसे लोग जो अपनी योग्यता, श्रद्धा और सेवा से समाज में बदलाव ला सकें। ऐसे में गायत्री परिवार के जाग्रत सदस्यों को आगे आना चाहिए।

व्यक्तिगत रूप से हर किसी के पास कुछ विशेषताएँ होती हैं, कोई अच्छा लेखक है, कोई अच्छा वक्ता, कोई संगठक, कोई विचारक। समाज की जरूरतों के अनुरूप इन प्रतिभाओं को निखारना और उन्हें राष्ट्र-निर्माण में लगाना आज की आवश्यकता है। हर व्यक्ति यह न सोचे कि उसका योगदान छोटा है। हर छोटा प्रयास भी किसी बड़ी योजना का हिस्सा होता है। जहाँ भी आवश्यकता हो, वहाँ अपने समय, श्रम और संसाधनों से योगदान दें।

गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ता अपने जीवन में यह संकल्प लें कि वे केवल उपदेश नहीं देंगे, अपितु स्वयं अपने आचरण से उदाहरण बनेंगे। जाग्रत आत्माएँ किसी भी कार्य को केवल 'कर्त्तव्य' नहीं बल्कि 'प्रेरणा' के रूप में करें। जिस दिन हर सदस्य यह सोचने लगेगा कि 'मैं क्या कर सकता हूँ' उस दिन से परिवार और राष्ट्र, दोनों का भविष्य उज्ज्वल बनने लगेगा।

इन दिनों तो सामाजिक जागरूकता पूरी दुनिया के लिए एक चुनौती बनी हुई है। ऐसे में हमारे देश और लोगों के लिए भी एकजुटता और सजगता जरूरी है। विरोध के कारण जो दूरी बढ़ गई है, उसका भला कैसे करें? कोई भी संघर्ष कैसे बदलाव बने? नए निर्माण के लिए हमारे सामने जिन-जिन विश्व समस्याओं की सच्चाइयाँ हैं, उन्हें देखकर

लगता है कि हम अपने वातावरण को सजग और सुव्यवस्थित बनाने की दिशा में सफल नहीं हुए हैं। हमें योजनाबद्ध ढंग से प्रयासों की पुनः समीक्षा करनी चाहिए।

इन समस्याओं को सुलझाने के लिए एक सुविचारित दृष्टिकोण और कार्ययोजना की आवश्यकता है। सतत प्रयास, योजनाबद्ध संकल्प, सामाजिक सहभागिता और जागरूकता से ही इस कार्य को सार्थक रूप दिया जा सकता है।

सामूहिक समर्पण, अनुशासन, दृढ़ इच्छाशक्ति और समय की पाबंदी—ये सब किसी भी राष्ट्र, समाज या संगठन को सशक्त बनाने के लिए अनिवार्य घटक होते हैं। हमें यह समझना होगा कि व्यक्तिगत सीमाओं से परे जाकर सामूहिक हित के लिए कार्य करना ही वर्तमान की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज समाज में सतही चेतना को गहराई में ले जाने की जरूरत है।

जो भी कार्य हो, उसमें ठोस योजना, समर्पित साधन और समवेत प्रयास होने चाहिए। हर परिवार, समाज और राष्ट्र को आज एक सूत्र में बाँधने की जरूरत है—'एक राष्ट्र, एक भाषा, एक संस्कृति, एक उद्देश्य।'

हमें यह समझना होगा कि समाज का हर वर्ग, विशेषकर युवावर्ग, नई दिशा के लिए आकांक्षी है। यदि हम उन्हें दिशा और दृष्टि दे सकें तो वे परिवर्तन का आधार बन सकते हैं। गायत्री परिवार को चाहिए कि वह जनसहयोग, जनजागरण और जनशक्ति के माध्यम से समाज में नवचेतना का संचार करे।

इसके लिए हमें तीन प्रमुख क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना होगा—

(1) शैक्षिक और सामुदायिक क्षेत्रों में मिशन की योजनाओं का विस्तार।

(2) सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विषयों का जनजागरण।

(3) साधनसंपन्न वर्ग का सहयोग और समर्पण।

इन तीनों मोर्चों पर यदि हम जुटें, तो निश्चित रूप से हमारा समाज पुनः स्वर्णिम युग की ओर बढ़ेगा। □

पादपों ने वट वृक्ष को संबोधित करते हुए पूछा—"वट पितामह! आपने ऐसे कौन-से कर्म किए हैं कि आपको वरिष्ठता का सौभाग्य मिला है?"

वट बोले—"प्राणी को जिस प्रकार विधाता से अनुदान मिलते हैं, उसी प्रकार उसे भी उसे मिले वैभव, साधन, गुण इत्यादि को अपने पास संचित न रखकर निरंतर वितरित कर देना चाहिए। वरिष्ठ बनने की एकमात्र शर्त यही है कि हमें जो मिला, वह हमने अन्यों को बाँटा या नहीं, जो देने की उदारता दिखाता है, वही पाने का अधिकारी भी बनता है।"

पादपों को वट वृक्ष की बात समझ में आ गई।

पंचकोश-साधना

पंचकोश की दिव्य साधना, आध्यात्मिक उपचार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

पंचानन माँ गायत्री के, यही कोश मन में धारें।
आध्यात्मिक उन्नति इससे ही, संभव है यह स्वीकारें॥
प्रथम कोश का केंद्र नाभि है, यही अन्नमय कहलाता।
चिरयौवन-आरोग्य-दीर्घ, जीवन साधक को दे जाता॥
तत्त्वशुद्धि-उपवास-तपस्या, योगासन आधार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

मेरुदंड का मूल यही तो, मूलाधार कहा जाता।
अद्वितीय भी यह द्वितीय है, कोश प्राणमय कहलाता॥
प्राणायाम, बंध मुद्रा की, विधि जो भी अपनाता।
ऐश्वर्य पुरुषार्थ तेज यश, उसे सहज सुलभ हो जाता॥
इंद्रिय सुख में लिप्त रहा जो, वह जीवन बेकार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

कोश तृतीय मनोमय का, कर दृढ़ संकल्प जगाना है।
लक्ष्य सिद्धि पाने को, आज्ञाचक्र में ध्यान लगाना है॥
आकर्षक व्यक्तित्व, धैर्य और एकाग्रता आती है।
सतत रहे अभ्यास सहज ही, बुद्धि प्रखर हो जाती है॥
जाप ध्यान त्राटक तन्मात्रा, साधना अंगीकार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

विज्ञानमय कोश चतुर्थ जगाने, हृदय में ध्यान लगाना है।
अतींद्रिय क्षमता दिव्य दृष्टि, दैवी सद्गुण पाना है॥
सहृदयता सज्जनता, साधक के जीवन में आती है।
आत्मानुभूति योग सोऽहम्, साधना दिव्यता लाती है॥
भेदन ग्रंथि स्वरों का संयम, शास्त्रों का उच्चार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

पंचम कोश आनंद जगाने, सहस्त्रार में ध्यान धरो।
आत्मसाक्षात्कार प्रभुदर्शन, आध्यात्मिक आनंद भरो॥
इसे जगाने नाद साधना, बिंदु साधना प्रखर करो।
तुरीय स्थिति, कला साधना, से तन-मन में चमक भरो॥
पंचकोश आत्मा के आवरण, सद्गुरु का उद्गार है।
युगऋषि का आत्मिक अनुशासन, साधक को स्वीकार है॥

—चक्रेश पांडेय

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

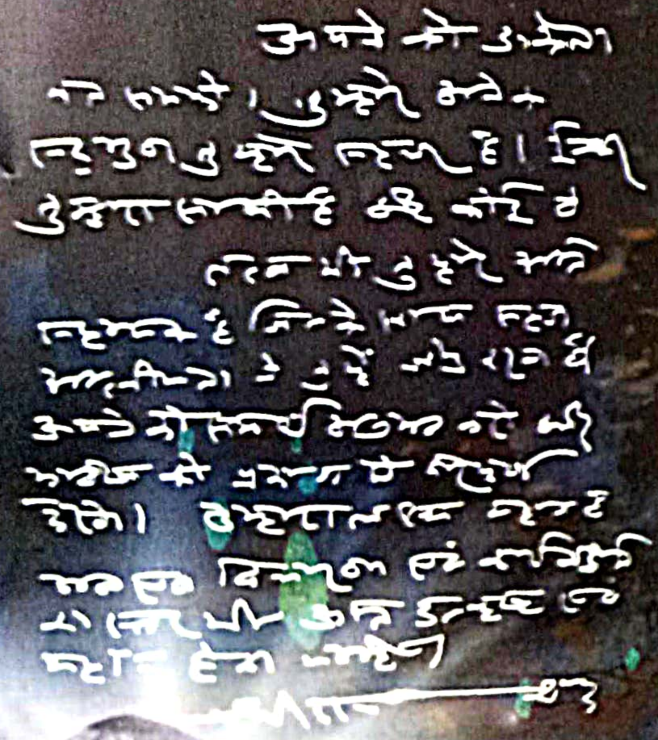

खंड- 19

शब्दब्रह्म-नादब्रह्म

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में शब्दब्रह्म और नादब्रह्म को सदैव ही महत्त्व दिया जाता रहा है। आधुनिक विज्ञान ने भी शब्द और नाद की सूक्ष्मशक्ति को स्वीकार किया है। बताया है, इनसे अनेक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। इस ज्ञान के लिए हम पढ़ें—

- शब्द तत्त्व की अद्भुत शक्ति।
- शब्द शक्ति और मंत्र विज्ञान।
- शब्द की सार्थकता।
- नाद के दो रूप: आहत और अनाहत।
- नाद और ध्वनि विज्ञान।
- शब्द एवं नाद के चमत्कारी प्रभाव।
- शब्द एवं नादब्रह्म की सफल साधना।
- प्राणशक्ति की अतींद्रिय क्षमता।

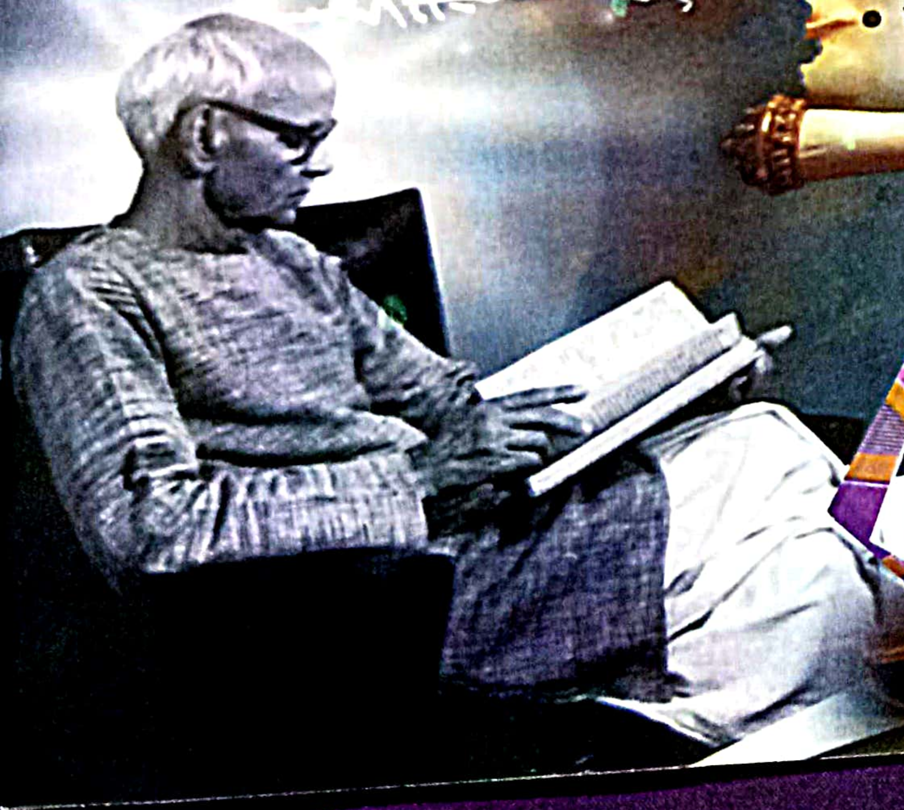

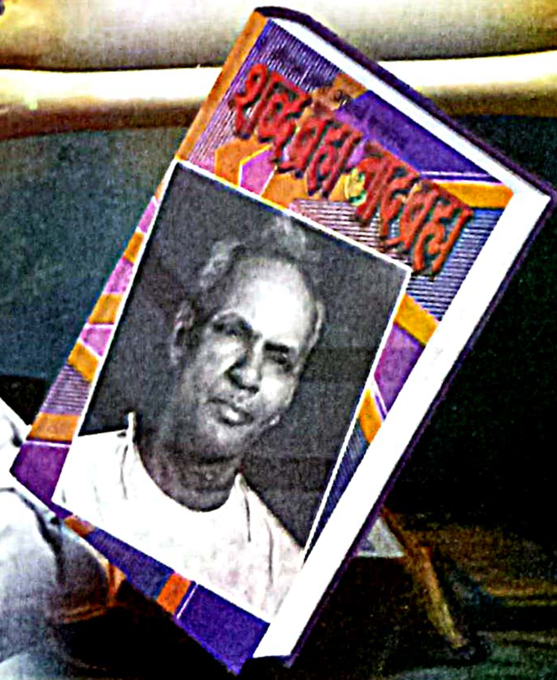

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01–06–2026
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

Houses of Parliament, London में आयोजित “Ethical AI and Future of Global Peace” सम्मेलन में प्रति कुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय, डॉ. चिन्मय पंड्या जी द्वारा वैज्ञानिक अध्यात्म एवं वैश्विक शांति विषय पर विशेष उद्‌बोधन।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा–281 003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org